नूतन निष्काम पत्रिका

नूतन निष्काम पत्रिका * वर्ष-9 * अंक-8 * मुम्बई * अगस्त-2018 * मूल्य-रु.9/-

स्थापना वर्ष:१९४२

ऋग्वेद यजुर्वेद

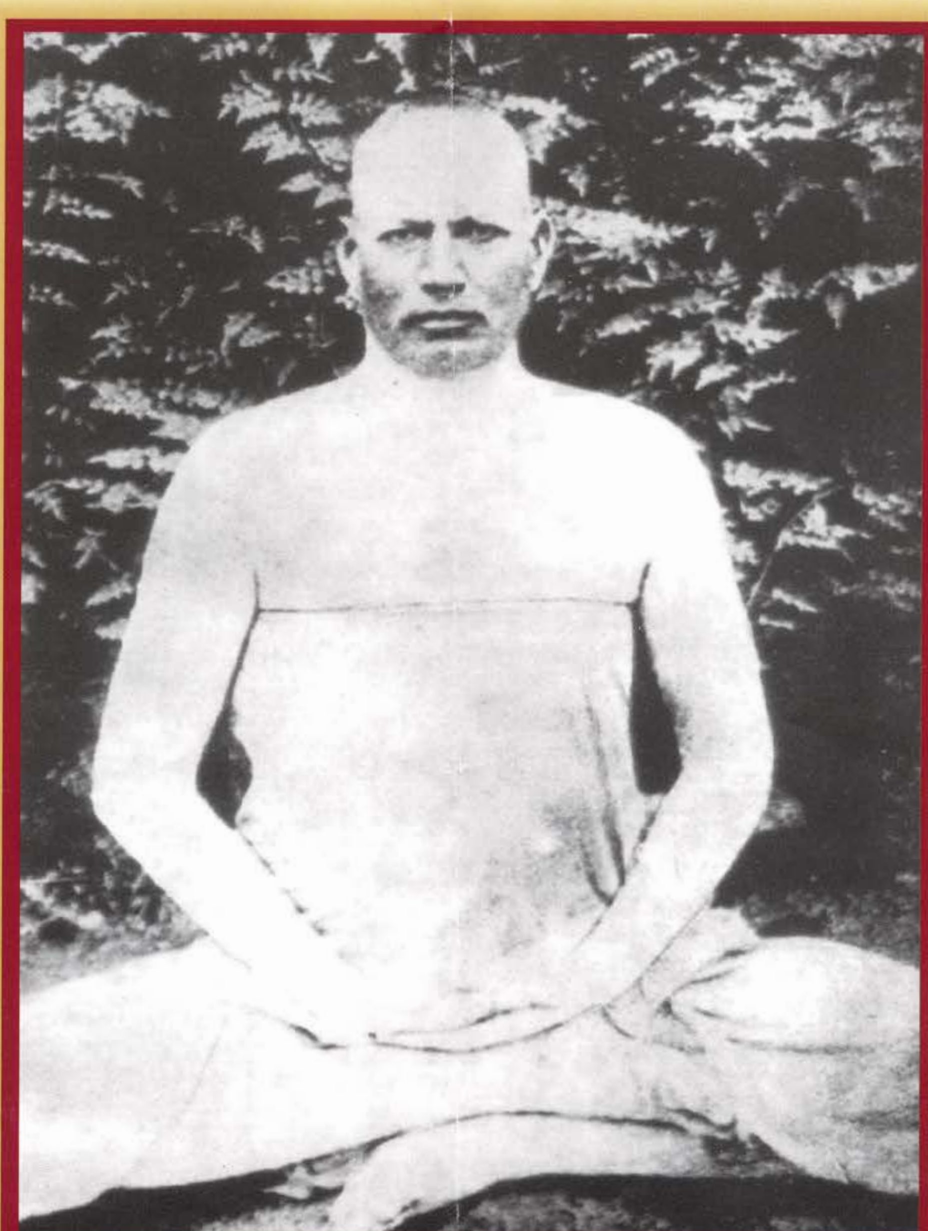

सामवेद **स्वामी दयानन्द सरस्वती** अथर्ववेद

अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन-२०१८ दिल्ली हेतु आमन्त्रण

माननीय महोदय,

सादर नमस्ते!

प्रभु कृपा से आप स्वस्थ एवं सानन्द होंगे।

आप सभी को अवगत है कि "**सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा एवं दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा**" के संयुक्त तत्वावधान में "**अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन-२०१८ दिल्ली**" का आयोजन दिल्ली में दिनांक **२५-२६-२७ एवं २८ अक्तूबर, २०१८ तक** किया जा रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलनों की परम्परा का आरम्भ वर्ष १९२७ में दिल्ली से हुआ था। तब से आर्यों के विशाल संगठन के ये आयोजन देश विदेश में होते रहे। वर्ष २००६ के दिल्ली महासम्मेलन में लिए गए संकल्प के आलोक में इन महासम्मेलनों की श्रृंखला विदेशों में पुन: आरम्भ हुई और तब से लेकर अब तक **अमेरिका, मॉरीशस, सूरीनाम, हॉलैण्ड, दिल्ली-२०१२, दक्षिण अफ्रीका, सिंगापुर-थाईलँड, ऑस्ट्रेलिया, नेपाल एवं बर्मा** में आर्य महासम्मेलन सफलतापूर्वक सम्पन्न हुए हैं। अब यह महासम्मेलन पुन: दिल्ली में आयोजित हो रहा है। देश-विदेश में इसकी तैयारियाँ आरम्भ हो चुकी हैं।

हमारा सौभाग्य है कि आर्यसमाज के संस्थापक और १९वीं सदी के महान उन्नायक, वेदोद्धारक, महर्षि देव दयानन्द जी सरस्वती के जन्म के २०० वर्ष २०२४ में पूर्ण हो रहे हैं। वर्ष २०१८ से २०२४ तक सार्वदेशिक सभा द्वारा महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के द्विशताब्दी जन्म समारोहों के आयोजनों का प्रारम्भ भी इस महासम्मेलन के साथ-साथ किया जाएगा।

आपसे निवेदन है कि **महासम्मेलन की तिथियों को अपनी दैनिन्दनी (डायरी) में अभी से नोट कर लें** तथा **चारों दिन सम्मेलन के लिए अवश्य पधारें।** सम्मेलन के प्रचार तथा आर्यजनों में इसके प्रति उत्साह पैदा का दायित्व विशेष रूप से प्रचार संसाधनों पर ही निर्भर है।

अत: आपसे निवेदन है कि आपकी पत्रिका/समाचार पत्र में सम्मेलन सम्बन्धी जो भी सूचना प्रकाशनार्थ भेजी जाए उसे उचित स्थान पर प्रमुखता से प्रकाशित करके महासम्मेलन को सफल बनाने में सहयोग प्रदान करें। सम्मेलन के सम्बन्ध में समय-समय पर प्रकाशनार्थ सूचनाएं/विज्ञापन आदि आपको भेजे जाएंगे। कृपया जिन-जिन अंकों में भेजी गई सूचनाएं प्रकाशित हों, उनकी एक-एक प्रति सम्मेलन कार्यलय को अवश्य भिजवा दिया करें।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, आर्यसमाज की वर्तमान स्थितियों, विश्व के तेजी से बदलते परिवेश तथा तकनीकी परिवर्तनों से पूर्णतया अवगत हैं तथा उसी के अनुरुप आर्यसमाज की वर्तमान और भविष्य की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए अनेक विशेष योजनाओं का निर्माण भी किया गया है। महासम्मेलन में विश्व के कोने-कोने से पधारे महानुभाव उन सब नए कार्यक्रमों और योजनाओं की सही जानकारी भी ले सकेंगे तथा अपने क्षेत्र में कार्य बढ़ाने के लिए उनका उपयोग भी कर सकेंगे। कुल मिलाकर हम यह कह सकते हैं कि आर्यसमाज को एक नए युग की ओर ले जाने के लिए सन् २००६ में विश्व में फैले इस संगठन की सही स्थितियों का अनुमान सार्वदेशिक सभा को उतना अधिक नहीं था जितना कि गत १० वर्षों में हुए अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलनों के सफर के पश्चात् आज है। आज यह अहसास हो रहा है कि हमारे पूर्वजों ने कितनी शक्ति लगाकर दुर्गम परिस्थितियों में इन देशों में आर्यसमाज की नींव डाली थी। उनको स्थिर रखना और आगे बढ़ाना हम सबकी जिम्मेदारी है।

सम्मेलन के प्रचार-प्रचार एवं जन साधारण में जागृति हेतु आर्यसमाज की प्रत्येक पत्र-पत्रिका के सम्पादकों की एक गोष्ठी एवं सम्मेलन भी आयोजित होगा। सम्मेलन में प्रत्येक पत्र-पत्रिका के सम्पादकों के बैठने के लिए विशेष व्यवस्था रहेगी। कृपया अपने पत्र/पत्रिका के लैटर हैड पर अपने एक प्रतिनिधि/सम्पादक का नाम संयोजक महोदय के नाम उपरोक्त पते पर लिखकर भेजने की कृपा करें, ताकि उनके नाम प्रैस कार्ड जारी किया जा सके और उनके बैठने आदि की समुचित व्यवस्था हो सके।

इस पत्र के साथ आपकी सेवा में महासम्मेलन के प्रचार हेतु **पोस्टर, पैम्पलेट, सम्मेलन में उपलब्ध सुविधाएं एवं स्मारिका के विज्ञापन सम्बन्धी सूचना** भेजी जा रही है। यह प्रचार सामग्री सम्मेलन की वैबसाइट www.aryamahasammelan.org एवं www.thearyasamaj.org पर भी उपलब्ध है।

आपसे निवेदन है कि इन्हें अपने सम्माननीय प्रत्र/पत्रिका में पूरे पृष्ठ पर उचित स्थान पर प्रकाशित करके सम्मेलन प्रचार में सहयोग प्रदान करें। धन्यवाद सहित

संलग्न : सम्मेलन की प्रथम सूचना

भवदीय

(महाशय धर्मपाल)	**(सुरेशचन्द्र आर्य)**	**(प्रकाश आर्य)**	**(धर्मपाल आर्य)**
अध्यक्ष	प्रधान, सार्वदेशिक सभा	मन्त्री सार्वदेशिक सभा	महासम्मेलन संयोजक
स्वागत समिति	०९८२४०७२५०९	०९८२६६५५११७	०९८१००६१७६३

आर्य समाज सांताक्रुज़, मुम्बई का मासिक मुखपत्र
वर्ष : ९ अंक ८ (अगस्त -२०१८)

- दयानंदाब्द : १९५, विक्रम सम्वत् : २०७५
- सृष्टि सम्वत् : १,९६,०८,५३,११९

प्रबन्ध संपादक : चन्द्रगुप्त आर्य
संपादक : संगीत आर्य
सह संपादक : संदीप आर्य
कार्यकारी संपादक : विनोद कुमार शास्त्री, लालचन्द आर्य, रमेश सिंह आर्य, यशबाला गुप्ता.

विज्ञापन की दरें : शुल्क
— पूरा पृष्ठ : रु. ३,०००/- — एक प्रति : रु. ९/-
— १/२ पृष्ठ : रु. २,०००/- — वार्षिक : रु. १००/-
— १/४ पृष्ठ : रु. १,५००/- — आजीवन : रु. १०००/-
— विशेषांक की दरें भिन्न होंगी ।
वर्गीकृत विज्ञापन

रु. १०/- प्रति शब्द, न्यूनतम रु. ५००/-
चैक/डीडी/मनी आर्डर आदि 'आर्य समाज सान्ताक्रुज' के नाम से ही भेजें, मुंबई के बाहर के चैक न भेजे। विज्ञापन सामग्री १० तारीख तक भेजें। **'नूतन निष्काम पत्रिका'** का मुद्रण ऑफसेट विधि से होता है।

पता : आर्य समाज सांताक्रुज़
(विठ्ठलभाई पटेल मार्ग) लिंकिंग रोड, सांताक्रुज़ (प.), मुंबई -५४. फोन : २६६० २८००, २६६० २०७५

अनुक्रमणिका	पृष्ठ सं.
अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन-२०१८ दिल्ली..	२
सम्पादकीय	३
उपनिषदों का प्रथम सन्देश-दृढ़ संकल्प	४
मुक्ति में जीव की दशा	५
अमर ग्रन्थ-सत्यार्थ प्रकाश कब और क्यों?	६-८
जीवन एक निरंतर अग्निहोत्र	७-८
ऋषि दयानन्द का सत्संग	९-१०
शान्तिपाठ	११
हम निष्पाप होकर तेरे प्यारे बन जाएँ	१२
बुजुर्गों ने दी समाज को 'पर्यावरण की सीख'	१३-१४
राजा के अधिकार और कर्त्तव्य	१५-१६

सम्पादकीय

दिशाहीन होता आर्य समाज

महर्षि के आगमन के पूर्व पथभ्रष्ट हो चुके वैदिकधर्मी, जिन्हें आज हिन्दू संबोधित किया जाता है, अनेकों कुरीतियों, पाखण्ड, अन्धविश्वास व वर्णभेद में उलझे हुए है। महर्षि ने हमें पुन: मूल वेद मार्ग का स्मरण कराया और प्रशंसकों के आग्रह पर आर्य समाज की स्थापना की, जिसके कारण देश में समग्र क्रान्ति आयी। आर्य समाज की प्रतिष्ठा एक क्रान्तिकारी संगठन के रूप में स्थापित हो चुकी थी। राष्ट्र में शिक्षा के क्षेत्र में आर्य समाज का योगदान अमूल्य था। यह आर्य समाज का स्वर्णिम एवं गर्वमय इतिहास है। किन्तु शनैः शनैः आर्य समाज के ओज में कमी आने लगी है। षड्यन्त्र के तहत आज आर्य समाज के सिद्धान्तों के साथ हम समझौता करने लगे हैं। परिणामस्वरूप समाज का स्वरूप और दिशा बदलती जा रही है। सभी सम्प्रदायों के अनुयायियों को वैदिकधर्म में जोडने की बजाय हम स्वयं दूसरे मञ्चों पर जाकर अपनी संस्था की अवहेलना व निरादर कर रहे हैं साथ ही संस्था को कमजोर व खोखला कर रहे हैं। परिणामस्वरूप आज आर्य समाज दिशाहीन होता जा रहा है। प्रतिदिन नये नये संगठन एवं नये मंच आर्य समाज की छाती पर मानो हथौड़ा मार रहे हैं। आज अपने मञ्चों से भी हम अपनी बात नहीं बोल पा रहे हैं। जहां से महर्षि ने शुरू किया था हम वहीं लौट जाना चाहते हैं। महर्षि, पूर्वजों, समर्पित सच्चे मिशनरियों, सन्यासियों, विद्वानों व कार्यकर्ताओं के त्याग का हम जाने अनजाने अपमान कर रहे हैं। इस स्थिति को बदलना होगा।

दिशाहीन हो रहे आर्य समाज को वापिस उसकी खोयी प्रतिष्ठा दिलाना सच्चे आर्यसमाजियों व दयानन्दियों की जिम्मेदारी है। वरना आर्य समाज भी अन्यों की तरह ही एक और संस्था बन जायेगी।

संगीत आर्य
मो.: ९३२३५ ७३८९२

उपनिषदों का प्रथम सन्देश-दृढ़ संकल्प

महात्मा आनन्दस्वामी सरस्वती

उपनिषदों का सबसे प्रथम सन्देश है- दृढ़ संकल्प। जो भी करना है, दृढ़ संकल्प से आगे बढ़ो, अवश्य सफलता मिलेगी। इस क्रम में मैं आपको मूलशंकर की कथा सुना रहा हूँ।

दृढ़ संकल्प करके वे घर से निकले कि सच्चे शिव के दर्शन पाऊँगा। निकल पड़े घर से। परन्तु उनके पिता तो उन्हें बाँधना चाहते थे। वे भी स्थान-स्थान पर तलाश करने लगे। अन्त में सिद्धपुर के मेले में उन्हें पकड़ लिया। उन्हें फुसलाया, डराया-धमकाया और जब देखा कि मूलशंकर किसी प्रकार नहीं मानते तो कितने ही सैनिकों के पहरे में उसे कैद कर लिया। सैनिकों से कहा- ''देखो, यह भागने न पाये!''

सैनिक पहरा देने लगे। रात्रि हो गई। मूलशंकर जाग रहा है। चौकीदार भी जाग रहे है। दूसरी रात आ गई। मूलशंकर सोया नहीं। चौकीदार भी सावधान थे। तीसरी रात आ गई, मगर मूलशंकर अब भी जाग रहा है। पहरेदारों ने कहा- ''यह तो कहीं नहीं जाता। जाने का प्रयत्न भी नहीं करता। यह जायेगा नहीं।'' थके हुए थे, ऊँधने लगे। मूलशंकर ने देखा तो सोचा- 'अब समय है।' मन-ही-मन कहा- 'मूलशंकर, भाग सके तो भाग, नहीं तो फिर शायद अवसर न मिले।' यह सोचा और चुपके से पुन: भाग निकले।

यह है दृढ़ संकल्प की बात! यदि मूलशंकर का दृढ़ संकल्प न होता तो वह सोचता- अब क्या करें? भाग गये थे, पकड़े गये। फिर विवाह ही करा ले। अन्य लोग भी तो कराते हैं। परन्तु मूलशंकर ने ऐसा नहीं सोचा। उसके हृदय में एक लगन थी कि सच्चे शिव के दर्शन करने हैं। अन्तत: मूलशंकर को भी सच्चे शिव के दर्शन पाने में सफलता हुई और यह सफलता पा चुके तो हृदय ने कहा- 'दयानन्द, इस अमृत को अकेला न लूट, इस संसार का भी ध्यान कर। जो दु:खी है, उसके पास जा। यह अमृत उसको भी दे।'
तब वे आ गये।
यह है दृढ़ संकल्प का परिणाम!

अतिथि-यज्ञ : हमारी संस्कृति का महान् आधार

राजा रन्तिदेव की कहानी है। उन्होंने अतिथि-यज्ञ को इस सीमा तक पहुँचाया कि अतिथि उनसे जो भी माँगते, वही उठाके दे देते।

एक बार उनके राज्य में भयानक अकाल पड़ा। महाराज रन्तिदेव के यहाँ कितने ही दु:खी और भूखे मनुष्य आने लगे। महाराज ने अपने अनाज के भण्डार उनके लिए खोल दिये। अपने कोषों के द्वार खोल दिये। धीरे-धीरे सारा कोषों के द्वार खोल दिये। धीरे-धीरे सारा कोष समाप्त हो गया, सारा अन्न समाप्त हो गया, कपड़े भी समाप्त हो गये। महाराज रन्तिदेव ने अपने रिक्त महल को देखा तो उसका हृदय रो उठा। इसलिये नहीं कि वे निर्धन हो गए, अपितु इसलिये कि यदि अचानक कोई अतिथि आ गया, कोई आवश्यकता वाला आ गया तो उसे देंगे क्या?

इस विचार के आते ही, वे अपनी रानी और छोटे पुत्र को लेकर महल के बाहर चल पड़े। नगर के बाहर निकल गये। उजड़े हुए उद्यानों और निर्जन क्षेत्रों से भी आगे चले गये-उन वनों में जहाँ जल नहीं था, खाने को भी नहीं था। एक दिन, तीन दिन, दस, बीस-इसी प्रकार चालीस दिन व्यतीत हो गये। कभी-कभी सूखे पत्ते खाकर निर्वाह कर लेते। कभी-कभी वे भी न मिलते । शरीर की शक्ति समाप्त हो गई। सूखकर वे तीनों- महाराज, महारानी और राजकुमार हड्डियों का ढाँचा रह गये। ऐसी अवस्था हो गई कि उठकर चलना भी कठिन हो गया। चालीसवे दिन वे एक सूखे वृक्ष के नीचे बैठे थे। एक सज्जन वहाँ आये। ताजा भोजन से पूर्ण एक थाल उनके पास था। उसने तीनों के आगे भोजन परोसा। ताज़ा ठंडा जल भी रख दिया और यह कहकर चला गया- ''तुम खाओ, मुझे आगे यात्रा पर जाना है।''

तीनों आचमन करके खाने को बैठे। महाराज रन्तिदेव का काँपता हुआ हाथ भोजन की ओर बढ़ा तो उनका हृदय काँप उठा। एक हूक-सी उठी हृदय से- 'हाय! आज क्या किसी अतिथि को भोजन कराये बिना ही हम भोजन करेंगे? आज तक जो कार्य नहीं किया, क्या वह आज करेंगे?'

तभी दूर से दो ब्राह्मण आते दृष्टिगोचर हुए। रन्तिदेव के पास आकर उन्होंने कहा- ''हमें भूख लगी है, क्या आप थोड़ा भोजन दे सकते है?''

रन्तिदेव प्रसन्न होकर बोले- ''अवश्य!'' और अपने सामने रखा हुआ भोजन उन्होंने दोनों ब्राह्मणों को बाँट दिया। इससे अतिथियों की क्षुधा शान्त न हुई तो महारानी का भोजन भी उन्हें दे दिया। पानी भी पिला दिया। दोनों प्रसन्न होकर चले गये। महाराज ने राजकुमार के भोजन को तीन भागों में विभक्त किया। उसे खाने ही लगे कि दो और यात्री आ गये। वे तीनों का भोजन खा गए। केवल थोड़ा-सा जल शेष रह गया। महाराज ने कहा- ''चलो थोड़ा-थोड़ा पानी पीकर ही निर्वाह कर लो।''

तभी एक चाण्डाल आया, प्यास से बिलखता हुआ; बोला- ''प्यासा हूँ, पानी पिला दो !''

महाराज रन्तिदेव ने सारा पानी उसे पिला दिया। कुछ भी उनके पास न रहा। तभी उनके आत्मा के अन्दर से यह ध्वनि आई- ''रन्तिदेव! अतिथि-यज्ञ की परीक्षा में तुम सफल हुए। सब-कुछ तुम्हें मिल सकता है। बोलो, क्या चाहते हो?''

रन्तिदेव ने काँपते हुए ओठों से कहा- ''नहीं चाहिए मुझको स्वर्ग नहीं चाहिए राज्य और भोग। देना चाहते हो दाता, तो एक यही वर दो कि मैं दु:खी लोगों के हृदय में निवास कर सकूँ। उनके दु:ख दूर कर सकूँ, उनका कल्याण कर सकूँ।''

रन्तिदेव बनना सरल नहीं, फिर भी अतिथि-यज्ञ की भावना तो हृदय में उत्पन्न करनी ही चाहिए। अतिथि-यज्ञ हमारी संस्कृति का एक महान् आधार है। इसीलिए इसे आर्य लोगों में जीवन के दैनिक कर्मों का एक अंग बताया गया है।

साई इतना दीजिये, जा में कुटुम समाय।
मै भी भूखा ना रहूँ साधु न भूखा जाय ।।

❒❒❒

मुक्ति में जीव की दशा

पं. बुद्धदेव मीरपुरी

मुक्ति में जीव की क्या दशा होती है? इस सिद्धान्त पर भी आधुनिक दार्शनिकों का मतभेद है, कतिपय कहते हैं कि जीव ब्रह्म हो जाता है। कई कहते हैं कि जीव जड़वत् हो जाता है, कई कहते है सर्वथा नष्ट होता है। मेरे विचार में जीव न ब्रह्म होता है, न नष्ट होता है, किन्तु अपने स्वरूप से ब्रह्म के आनन्द को भोगता है। प्रमाण निम्नलिखित हैं-

वेदान्त

सम्पद्याविर्भाव: स्वेनशब्दात्।। वे० ४.४.१

एष सम्प्रसादोऽस्माच्छरीतात् समुत्थाय परं ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते।। -छां० ८.३.४

परमात्मा को प्राप्त होकर जीवात्मा अपने रूप से प्रकट होता है, ऐसा वेदादि शास्त्रों में लिखा है, अर्थात् जब तक जीव मुक्त नहीं होता तब तक शरीर से कार्य करता है, तथा मुक्त होकर स्वयं अपनी शक्तियों से कार्य करता है।

स्वामी दयानन्दजी ने नवमसमुल्लास में जीव की चौबीस स्वाभाविक शक्तियाँ लिखी हैं।

मुक्त: प्रतिज्ञानात्।। -वे० ४.४.२

मुक्त का एश्वर्य साधारण जीवों से अधिक होता है।

आत्मा प्रकरणात् ।।

जीवात्मा जिस ज्योति को प्राप्त होता है, वह भौतिक नहीं किन्तु परमात्मा है।

अविभागेन दृष्टत्वात्।। - वे० ४.४.४

मुक्ति में जीव प्रभु के सङ्ग रहता है, प्रकृति के सङ्ग नहीं।

शङ्का– स्वामी शङ्कर इसका यह अर्थ करते हैं कि जीव ब्रह्म एक हो जाते हैं।

समाधान– ब्राह्मणे जैमिनिरुपन्यासादिभ्य:। - वे० ४.४.५

जैमिनि आचार्य कहते हैं कि अविभाग या समानता जीव ब्रह्म की यही है कि जीव मुक्ति में ब्रह्म के आनन्दादि का उपभोग करता है। यथा-

यदा पश्य: पश्यते रुक्मवर्ण कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्।
तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जन: परमं साम्यमुपैति।।

- मुं० ३.२.३

जब देखनेवाला ज्योति:स्वरूप, संसारकर्त्ता, निराकार, रागादि रहित परमात्मा का दर्शन करता है, तब उसकी समता को प्राप्त होता है।

चितितन्मात्रेण तदात्मकत्वादित्यौडुलौमि:।। -वे० ४.४.६

औडुलौमि कहते हैं कि चेतनता से भी समानता होती है।

एवमप्युपन्यासात् पूर्वभावादविरोधं बादरायण:।। - वे० ४.४.७

व्यासजी कहते हैं कि इन दोनों ही बातों की मुक्ति में समानता होती है।

संकल्पादेव तु तच्छ्रुते: ।। - वे० ४.४.८

मुक्ति में जीव सङ्कल्प ही से सब कार्य करता है।

अत एव चानन्याधिपति: ।। -वे० ४.४.९

इसलिए उसका कोई अन्य सांसारिक राजादि अधिपति नहीं होता।

अभावं बादरिराह ह्येवम्।। -वे० ४.४.१०

बादरी कहते है कि मुक्ति में शरीर नहीं रहता।

द्वादशाहवदुभयविधं बादरायणोऽत:।। -वे० ४.४.१२

व्यासजी कहते है कि दोनों ही पक्ष ठीक है भौतिक शरीर नहीं रहता था जीवका अपना स्वाभाविक शरीर रहता है।

यही बात महर्षि दयानन्दजी ने लिखी है।

तन्वभावे सन्ध्यवदुपपत्ते: ।। वे- ४.४.१३

भौतिक शरीर के न होने पर भी जीव स्वप्नवत् ब्रह्मानन्द का उपभोग करता है।

इससे सिद्ध है कि व्यासजी स्वप्न को नवीन वेदान्तियों की भाँति तुच्छ नहीं समझते।

शङ्का– पूर्व सूत्रों में, जीव ब्रह्म की जो समानता बतलाई है, उसके ये अर्थ क्यों नहीं किये जाते कि जीव ब्रह्म एक हो जाते हैं?

समाधान– जगद्व्यापारवर्जं प्रकरणादसंनिहितत्वाच्च।।

- वे० ४.४.१७

जीव में यह सामर्थ्य कदापि नहीं हो सकता कि वह ब्रह्म की भाँति संसार की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय कर सके, अत: मुक्ति में जीव ब्रह्म नहीं होता।

प्रत्यक्षोपदेशादिति चेन्नाधिकारिकमण्डलस्थोक्ते:।।

- वे० ४.४.१८

यदि कहो कि जीव तथा ब्रह्म की प्रत्यक्ष एकता बतलाई है तब जीव ब्रह्म एक क्यों नहीं? इसका उत्तर यह है कि जीव का ऐश्वर्य माण्डलिक राजा की भाँति होता है, नि:सीम नहीं।

विकारावर्ति च तथाहि स्थितिमाह ।। -वे० ४.४.१९

जीव की मुक्ति वा ऐश्वर्य जन्म होता है।

दर्शयते चैवं प्रत्य क्षानुमाने ।। -वे० ४.४.२०

ऐसा ही श्रुति-स्मृति में लिखा है।

भोगमात्रसाम्यलिङ्गाच्च ।। -वे० ४.४.२१

जीव तथा ब्रह्म की केवल भोगमात्र में समानता होती है, जीव ब्रह्म के आनन्द का केवल उपभोगमात्र करता है।

शङ्का– सूत्र में जो अविभाग शब्द आया है उससे जीव ब्रह्म का एकत्व सिद्ध होता है।

समाधान– यह बात ठीक नहीं, क्योंकि संसार में अनेक पदार्थ अविभक्त संयुक्त होते हैं, इसका यह अर्थ कदापि नहीं हो सकता कि दो पदार्थों के संयुक्त होने से वे एक होते हैं। जल, वायु, पृथिवी, आकाश आदि सब पदार्थ संयुक्त हैं, किन्तु वे एक नहीं हैं। अनेक गाड़ियाँ इञ्जन के साथ संयुक्त होती हैं, किन्तु वे एक नही होतीं।

योग

'क्लेशकर्मविपाकाशयै: इस सूत्र का भाष्य करते हुए महर्षि व्यास लिखते हैं-

कैवल्यं प्राप्तास्तर्हि सन्ति बहव: केवलिन: हि त्रीणि बन्धनानि छित्त्वा कैवल्यं प्राप्ता ईश्वरस्य च तत् सम्बन्धो भूतो न भावी स तु सदैव मुक्त: सदैवेश्वर:।

यदि क्लेशादि के रहित होने से परमात्मा है तब अनेक मुक्त जीव भी क्लेशादि से रहित हैं, पुन: वे ईश्वर क्यों नहीं? इसका उत्तर व्यासजी यह देते हैं कि मुक्त जीव तीन बन्धनों को काटकर मुक्त होते हैं, किन्तु परमात्मा सर्वदा मुक्त तथा सर्वदा ईश्वर है, उसका क्लेशादि के साथ स्वम्बन्ध भूत, भविष्यत् किसी भी काल में नहीं होता। इस बात से स्पष्ट सिद्ध है कि योग के भाष्यकार तथा वेदान्त के कर्त्ता व्यासजी मुक्ति में भी जीव तथा ईश्वर की सत्ता को भिन्न-भिन्न मानते है।

अमर ग्रन्थ-सत्यार्थ प्रकाश कब और क्यों ? इस वैज्ञानिक युग से युवा वर्ग क्या चाहता है।

पं. उम्मेदसिंह विशारद
मो. : ९४११५ १२०१९

महाभारत काल के बाद ऋत सत्य के वैचारिक क्रान्ति का सूर्य ''सत्यार्थ प्रकाश'' महर्षि दयानन्द सरस्वती जी द्वारा रचित श्रावणी पक्ष वेद प्रचार सप्ताह मे सत्यार्थ प्रकाश घर-घर पहुंचाना है। ऋतस्यपथि वेधा अपायि-ऋ०-सत्य के पथ की रक्षा ईश्वर करता है।

ऋषि दयानन्द का जन्म १८२४ ई. में हुआ था। वे १८६० में गुरु विरजानन्द जी के पास विद्याध्ययन के लिये पहुचें। उस समय उनकी आयु ३६ वर्ष की थी। १८६३ में उन्होने गुरु से दीक्षा ली और अध्ययन समाप्त करके जीवन क्षेत्र में उतर पड़े। इस समय वे ३९-४० वर्ष के हो चुके थे। विरजानन्द के पास उन्होने जो सीखा वही उनकी वास्तविक शिक्षा थी। क्योंकि इससे पहले जो कुछ पढ आये थे उसे विरजानन्द जी ने भुला देने की उनसे प्रतिज्ञा ली थी। इस प्रकार ऋषि दयानन्द जी की यथार्थ शिक्षा १८६० से १८६३ तक कुल तीन वर्ष की थी। उन्होने पीछे चल कर अपने जीवन काल मे जितने व्याख्यान दिये, जितने ग्रन्थ लिखे, जितने शास्त्रार्थ किये वह इन तीन साल के अध्ययन का परिणाम था। इसी से स्पष्ट होता है कि इन तीन में उन्होने जो पाया था वह कितना मूल्यवान था।

तीन वर्षों का चमत्कार

अपने गुरू विरजानन्द जी से ऋषि दयानन्द जी ने जो गुर पाया था वह आर्ष तथा अनार्ष ग्रन्थों मे भेद करना था। ३६ वर्ष की आयु से पहले उन्होने जो कुछ पढा था वह अनार्ष ग्रन्थों का अध्ययन था। आर्ष ग्रन्थों के अध्ययन का उनका कुल समय तीन वर्षों का था। इन तीन वर्षों के अध्ययन के उनके जीवन उनकी विचारधारा मे जो क्रान्ति उत्पन्न कर दी उससे भारत के पिछले सौ वर्षो का इतिहास बन गया।

''धार्मिक सामाजिक व राष्ट्रीय चेतना का मूल स्रोत सत्यार्थ प्रकाश''

अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश १८७४ में लिखा गया। मुरादाबाद के राज जयकृष्णदास जब काशी में डिप्टी कलेक्टर थे तब ऋषि दयानन्द काशी पधारे थे। राजा जयकृष्ण दास ने ऋषि से कहा आपके उपदेशामृत से वे ही व्यक्ति लाभ उठा सकते है जो आपके व्याख्यान सुनते हैं। जिन्हे आपके व्याख्यान सुनने का अवसर नही मिलता उनके लिये अगर आप अपने विचारों को ग्रन्थ रुप में लिख दें तो जनता का बडा उपकार हो। ग्रन्थ के छपने का भार राजा जयकृष्ण ने अपने ऊपर ले लिया। यह आश्चर्य की बात है कि यह ब्रहत्कार्य तथा महत्वपूर्ण ग्रन्थ जिसे पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी ने १४ बार पढ़कर कहा कि हर बार में उन्हें नया रत्न हाथ आता है, कुल साढ़े तीन महीनो मे लिखा गया।

जिन्होने सत्यार्थ प्रकाश का गहराई से अध्ययन किया उन्होने पाया कि इसमे ३७७ ग्रन्थो का हवाला है इस ग्रन्थ मे १५४२ वेदमंत्रों या श्लोकों का उदाहरण दिया गया हैं चारो वेद, सब पुराण, ग्रन्थ, सब उपनिषिद, छओ दर्शन, अठारह-स्मृति, सूर्य पुराण, सूर्य ग्रन्थ, जैन-बौद्धग्रन्थ, बाइबल, कुरान-सबका उदाहरण ही नही उनका रेफरेन्स भी दिया है। किस ग्रन्थ मे कौन सा मंत्र या श्लोक या वाक्य कहां है, उनकी संख्या क्या है- यह सब कुछ इस साढे तीन महीनों में लिखे ग्रन्थ में मिलता है। जिसने नवीन सामाजिक दृष्टिकोण को जन्म दिया।

सत्यार्थ प्रकाश चुने हुए क्रान्तिकारी विचारी का खजाना है

ऐसे विचार जिन्हे उस युग मे कोई सोच भी नही सकता था। समाज की रचना जन्म के आधार पर न होकर कर्म के आधार पर होनी चाहिए। यह एक विचार इतना क्रान्तिकारी है कि इसकी क्रिया से हमारी ९० प्रतिशत समस्यायें हल हो जाती है। शिक्षा के क्षेत्र में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का विचार सत्यार्थ प्रकाश की ही देन है लोकमान्य तिलक ने कहा था स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है। दादाभाई नोरोजी ने स्वराज्य शब्द का प्रयोग किया था। किन्तु इनसे पहले ऋषि दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश के ८ वे सम्मुलास मे लिखा था कोई कितना कहे, परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है।

वर्तमान मे हम जिन समस्याओं को लेकर उलझे रहते हैं उन सबका निदान सत्यार्थ प्रकाश में मिलता हैं। जैसे हरिजनों की समस्या- स्त्रियों की समस्या- गरीबी की समस्या, देश भाषा की समस्या चुनाव की समस्या- नियम तथा-व्यवस्था की समस्या,- गौरक्षा की समस्या-नसबन्दी की समस्य- आचार की समस्या-नवयुवकों की समस्या-इन सब समस्याओं का हल सत्यार्थ प्रकाश में पहले से ही हैं।

वेदो की समस्या

हिन्दू समाज की सबसे बडी समस्या वेदों की थी। हर कोई वेदो का नाम लेकर कहता था, स्त्रियों और शूद्रो को वेद पढने का अधिकार नही है क्योंकि वेदो में लिखा है- ''स्त्री, शूद्रो ना धीयाताम''। बाल विवाह क्यों होना चाहिए क्योंकि वेदो मे लिखा है। जन्म से वर्ण व्यवस्था क्यो माने, क्योंकि वेदो मे लिखा है।

ब्राह्मणो ऽस्य मुखमासीत: ब्रह्माण परमात्मा के मुख से और शूद्र उसके पावं से उत्पन्न हुए है। जब ऋषि दयानन्द जी ने यह देखा कि वेदो का नाम लेकर हर संस्कृत वाक्य को वेद कहा जा रहा है। और वेदो का उदाहरण देकर वेद मंत्रो का अनर्थ किया जा रहा है। तब उन्होने निश्चय किया कि वेदो को केन्द्र बना कर हिन्दू समाज की रक्षा की जा सकती है। ऋषि दयानन्द जी ने वेदों से वेदों पर प्रहार किया।

वेदो के सम्बन्ध मे ऋषि दयानन्द की दूसरी खोज यह थी कि वेदो के शब्द रुढि नही यौगिक हैं। वेदो के उस समय के सभी विद्वानो भाष्यकारो ने वैदिक शब्दो के रूढी अर्थ ही किये थे। सायण, उच्वट, महीधर, मेक्स मूलर, राथ, विल्सन, ग्रॉसमैन ने एक दूसरे को देखा देखी अर्थ किये थे। किन्तु ऋषि दयानन्द जी ने इस विचार धारा को भी ठोकर मार दी और वेदो के यौगिक अर्थ कर के वेदो के प्रति संसार को नया मार्ग दिखाया। ऋषि दयानन्द जी ने हिन्दुओ को हिन्दू रहते हुए उन्हे नवीन विचार धाराओ मे रंग

शेष पृष्ठ ८ देखिये

जीवन एक निरंतर अग्निहोत्र

डॉ. अशोक आर्य

मानव जीवन एक निरंतर चलने वाले यज्ञ के समान है। हम सदा एवं सर्वत्र यह यज्ञ करते हुए अपने जीवन को भी अग्निहोत्रमय बनावे। जिस प्रकार अग्निहोत्र सर्वजन सुखाय होता है, उस प्रकार ही हमारा जीवन भी सर्वजन सुखाय ही हो। इस भावना को यजुर्वेद के प्रथम अध्याय का यह अंतिम मन्त्र इस प्रकार प्रकट कर रहा है।

सवितुस्त्वा प्रसवऽउत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। सवितुर्वः प्रसवऽ उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धाम नामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि।। (यजुर्वेद १.३१)

मन्त्र उपदेश कर रहा है कि

१. धूप और शुद्ध वायु से स्वास्थ्य उत्तम

सूर्य की किरणें और खुली हवा स्वास्थ्य के लिए अति उत्तम होती है, इस बात को हम सब अच्छे प्रकार से जानते हैं। एक बंद कमरे में, जहाँ न तो अच्छी धूप ही आती है और न ही खुली हवा ही मिलती है, में रहने वाले व्यक्ति का स्वास्थ्य कभी उत्तम नहीं होता। इस में रहने वाले व्यक्ति की अवस्था एक पुराने रोग से ग्रस्त व्यक्ति के समान होती है। इतना ही नहीं इस के आगे जा कर देखें तो हम पाते हैं कि यदि एक कमरा लम्बे समय से बंद पड़ा है, उसमें न तो खुली हवा ही प्रवेश कर पा रही है और न ही धूप अन्दर प्रवेश कर पा रही है। इस कमरे का दरवाजा खोलने वाले व्यक्ति को उपदेश किया जाता है कि जब इस कमरे को खोला जाए तो कुछ समय के लिए तत्काल इस के सामने से हट जाना चाहिए अन्यथा अन्दर से निकलने वाली गन्दी वायु स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालती है। धूप और हवा पर्यावरण को स्वच्छ करती है, जिससे हमारा स्वास्थ्य भी इस में विचरण से उत्तम होता है तथा रोगाणुओं का नाश होता है।

मन्त्र **सवितुः** के माध्यम से बता रहा है कि वह प्रभु उत्पादक है और उत्पादक होने के कारण उसने इस जगत् का उत्पादन किया है, इसे बनाया है, इसे पैदा यिा है। **अच्छिद्रेण पवित्रेण** शब्दों से मन्त्र ने कहा है कि वायु छिद्र से सदा रहित और निर्दोष होती है। इस कारण यह सब प्रकार के दोषों को दूर करने वाली होती है। इतना ही नही **सूर्यस्य रश्मिभिः** शब्दों के माध्यम से मन्त्र कह रहा है कि सूर्य की किरणें और खुली वायु उत्तम स्वास्थ्य का मूल होते हैं। यह सब प्रकार के मलों को दूर करते हैं, रोगाणुओं का नाश करते हैं और इस सब से ऊपर उठाकर सब को पवित्रता देते हैं।

१ पौष्टिक वातावरण में रहें

समुदाय का एक व्यक्ति जब उत्तम होता है तो पूरा का पूरा समुदाय ही उत्तमता की और अग्रसर हो जाया करता है। समुदाय के स्वास्थ्य का प्रभाव सदा व्यक्ति पर पड़ता है। यदि मेरे चारों और के व्यक्ति स्वस्थ हैं, हृष्ट-पुष्ट हैं, ज्ञानवान् हैं तो इस समुदाय का प्रभाव मेरे पर भी पड़ना अनिवार्य हो जाता है। इन के प्रभाव से मैं भी स्वस्थ बनूंगा में भी हृष्ट व पुष्ट बनूँगा, मेरे में भी ज्ञान का आधान होगा। क्योंकि मेरे चारों और का वातावरण इन गुणों से भरा हुआ है तो इन गुणों की वर्षा समुदाय के अन्दर के प्रत्येक प्राणी पर होना आवश्यक है। अतः मै ही नहीं मेरे साथ के लोगों में भी इन सब गुणों का आधान होगा। सब लोग स्वस्थ, हृष्ट-पुष्ट और ज्ञानवान् होंगे।

२ क्षेत्र रोगाणु रहित हो

इस के उलट यदि हमारे समुदाय के चारों कूड़े-करकट के ढेर लगे रहेंगे तो इस क्षेत्र में रोगाणुओं का होना भी अनिवार्य हो जाता है। जहाँ रोगाणुओं का, रोग के कृमियों का निवास हो उस क्षेत्र के समुदाय पर इनका प्रभाव न हो, यह तो कभी संभव ही नहीं होता। अतः इस क्षेत्र के निवासियों पर यह रोगाणु सदा ही हमले करते ही रहेंगे और इस क्षेत्र के लोगों का स्वास्थ्य खतरे में पड जावेगा। परिणाम-स्वरूप इस क्षेत्र का निवासी होने के कारण इस सब का प्रभाव मेरे स्वास्थ्य पर भी पडेगा और मैं किसी भी प्रकार रोगों से बच न पाऊँगा और रोग-ग्रस्त हो जाउंगा।

३ उत्तम स्वास्थ्य के लिए अग्निहोत्र

मै सदा स्वस्थ रहूँ। मेरे क्षेत्र के लोग सदा स्वस्थ रहें। मेरे चारों और का स्वास्थ्य उत्तम हो, इसके लिए हमें इस प्रकार के उपाय करने होंगे कि सब समुदाय का क्षेत्र स्वास्थ्य वर्धक गुणों रुपी वातावरण में पुष्पित व पल्वित होता रहे। इस के लिए आवश्यक है कि हम सदा अग्निहोत्र की शरण में रहें और दूसरों को भी ऐसा ही करने के लिए प्रेरित करें। इस हेतु ईश्वर हमें आशीर्वाद देते हुए उपदेश करते हैं कि:-

क) तेजोऽसि

जब जीव अपने समुदाय में उत्तम स्वास्थ्य के साथ निवास कर रहा होता है तो प्रभु उसे अनेक प्रकार की प्रेरणाएं देता है। इन प्रेरणाओं में एक है **तेजोऽसि** अर्थात् हे जीव! तू तेजस्वी है। उत्तम स्वास्थ्य सदा ही तेजस्विता का कारण होता है। जो व्यक्ति रोगों से ग्रस्त रहता है, वह सदा दुःखों में, संताप में डूबा रहता है तथा कष्ट-दायक जीवन यापन कर रहा होता है। इस प्रकार का जीवन जीने वाले के पास न तो समय हीं होता है और न ही इतनी शक्ति ही होती है कि वह कभी कहीं से भी कोई उत्तम प्रेरणा प्राप्त कर सके। इसलिए प्रभु ऊत्तम स्वास्थ लाभ पाने वाले प्राणी को ही **तेजोऽसि** का आशीर्वाद देता है और कहता है कि हे जीव! तू तेजस्वी बन।

ख) शुक्रम् असि

शुक्र से अभिप्राय वीर्य से होता है। वीर्य सब शक्तियों का आधार होता है। जो व्यक्ति अपने वीर्य का नाश कर लेता है, वह शक्तिहीन हो जाता है। इसलिए वीर्य की रक्षा आवश्यक होती है। इस कारण ही इस मन्त्र में परमपिता परमात्मा आशीर्वाद देते हुए कह रहे हैं कि हे जीव! तू वीर्यवान् बन क्योंकि उत्तम वीर्य से युक्त व्यक्ति का स्वास्थ्य सदा उत्तम रहता है।

ग) अमृतम् असि

जिस मनुष्य का स्वास्थ्य उत्तम होता है, वह सदा रोगों से मुक्त रहता है। इसलिए मन्त्र के माध्यम से उपदेश देते हुए प्रभु जीव को आशीर्वाद देते हुए आगे कहते है कि **अमृतम् असि** हे जीव! तू स्वस्थ होने के कारण कभी कष्टदायक असमय मृत्यु को प्राप्त नहीं होगा।

शेष पृष्ठ ८ देखिये

घ) धाम असि

अमृत का पान करने के कारण हे जीव! तू धाम असि अर्थात् तेज का पुंज बन गया है। तेरे शरीर के प्रत्येक अंग से तेज टपकने लगा है। तेज से प्राप्त तेजस्विता ने तेरा यश, तेरी कीर्ति सब और पहुंचा दी है। इस के साथ ही साथ नम अर्थात् तेरे में विनम्रता भी है। स्वभाव से विनम्र होने के कारण तेरे अन्दर जो शक्ति है, वह विनय से विनम्रता से विभूषित है।

ड) देवानां प्रियम्

इन सब कारणों से तू अनेक प्रकार के दिव्यगुणों का स्वामी बन गया है। तेरे अन्दर अनेक प्रकार के दिव्य गुण आ गए हैं। इसलिए तू देवताओं को अत्यधिक पसंद होने के कारण देवता लोगों का तू प्रिय हो गया है।

च) अनाधृष्टम्

इन दिव्यगुणों का स्वामी होने के कारण तू कभी धर्षित न होने वाला बन गया है।

छ) देवयज्ञनम्

तू अबाधित रुप से निरंतर अग्निहोत्र करने वाला बन गया है। सदा अग्निहोत्र के कार्यों को संपन्न करने के लिए प्रयासरत रहता है। इस प्रकार तू देवों का देने वालों का यज्ञ करने वाला बन गया है। निरंतर देवयज्ञ करने वाला होने के कारण तू अबाध गति से यज्ञ करने वाला हो गया है। तेरा यह अग्निहोत्र सदा ही अविच्छिन्न रहता है। इस में कभी कोई बधा नहीं आती।

जब तू पुरुषार्थ करते हुए इस देवयज्ञ को निरंतर करता है तो देवता लोग तेरे से अत्यधिक प्रसन्न होते हैं और इस कारण सब आवश्यक पदार्थ तुझे उपलब्ध करवाते हैं किन्तु तेरे अन्दर जो यज्ञ की भावना है, जो परोपकार की भावना है, जो दूसरों को कुछ देने की भावना है, तू कभी इस भावना को भूलता नहीं और कुछ देने की अभिलाषा अपने अन्दर सदा बनाए रखता है, इस कारण ही तू कुछ भी लेने के स्थान पर सब कुछ देवताओं के अर्पण कर देता है। अपने लिए कुछ भी नहीं रखता। यदि कुछ रखता है तो वह होता है यज्ञशेष। भाव यह है कि तू केवल यज्ञशेष को अर्थात् यज्ञ करने के पश्चात् शेषरुप में बचे का ही स्वयं के लिए उपभोग करता है। यह ही तेरी पवित्र कमाई है।

इस प्रकार मन्त्र ने हमें उपदेश किया है कि हमारा जीवन **अनाधृष्ट देवयजन** हो। हम बिना किसी बाधा के सदा प्रभु की सृष्टि को स्वास्थ्यवर्धक बनाए रखने के लिए यज्ञ की कड़ी को कभी टूटने ने दें और इसे करने की परम्परा को सदा बनाये रखें। हम इस बात को कभी मत भूलें की देवताओं के हमारे ऊपर बहुत से ऋण हैं। इन सब ऋणों से उऋण होने का एकमात्र साधन यह देवयज्ञ ही है। इस ऋण से उऋण होने का एकमात्र साधन यह देवयज्ञ ही है। इस से उऋण होने के लिए यह अग्निहोत्र ही एकमात्र साधन है। इससे हम अनेक प्रकार के **वार्धक्य** अर्थात् उन्नति को प्राप्त करते है और मृत्यु होने पर भी हम पुन: बंधन में नहीं आते और मुक्ति को प्राप्त होते हैं। यही कल्याण का मार्ग है।

''इति कल्याण का मार्ग''

❑❑❑

शेष पृष्ठ ६ चालू .....

दिया। कोई वृक्ष जड के बिना खडा नही रह सकता। कोई समाज अपने मूल के बिना नही जी सकता। ऋषि दयानन्द जी ने इसी गुर को पकडा था। उन्होने कहा पीछे वेदो की तरफ देखो, उसमे जमकर आगे भविष्य की तरफ पग बढाओ। भूत को छोड देंगे तो वृक्ष की जड कट जायेगी, भविष्य को नही देखेंगे तो उठ नही सकोगें यह ऋषि दयानन्द के सत्यार्थ प्रकाश का संदेश है, यही ऋषि दयानन्द के वेद भाष्य का संदेश है (नोट: कुछ अंश वैदिक संस्कृति का संदेश से लिये गये है:-)

सत्यार्थ-प्रकाश का मुख्य उद्देश्य आर्य समाज का विकास है एक चिन्तन योजना।

भारत की वर्तमान जन संख्या के हिसाब से आर्य समाज का विकास संतोष जनक नही है, यह एक महत्वपूर्ण चिन्ता का विषय है। अगर हम चुप बैठे रहे तो आने वाले समय में अधिकांश आर्य समाजो मे ताले लग सकते हैं हमे जागना ही पडेगा।

आज का युवा वर्ग इस वैज्ञानिक युग मे क्या चाहता है ?

आज के अधिकांश युवा वर्ग समाज मे प्रचलित धार्मिक सामाजिक, राजनैतिक मान्यताओ से ऊब चुके है, कुछ नया चाहते हैं और उनके लिये नया केवल वैदिक विचार धारा ही है क्योंकि वैदिक धर्म विज्ञान व सृष्टि क्रमानुसार हैं आज आर्य समाज को युग के साथ चलकर वैदिक मान्यताओं का प्रचार प्रत्येक रूप से करना होगा। जैसे-

१. सत्यार्थ प्रकाश के ग्यारह सम्मुलासो को अलग-अलग छपाकर छोटे-ट्रेक्ट के रुप में वितरण किया जाये, छोठे ट्रेक्ट लोग जल्दी पढते है।

२. भारत सरकार से मांग करे कि भारत की शिक्षा पद्धति में एक विषय वेदों के आर्ष मान्यताओ का पाठी का अनिवार्य किया जाए।

३. यज्ञ पद्धति पंच महायज्ञ की लाखो प्रतियाँ छपाकर निशुल्क बांटी जाऐ।

४. आर्य समाज की प्रमुख मान्यताऐं, सोलह संस्कारो का टेक्ट छापे जाये। शराब पीने व धूम्रपाने से हानिया का लघु पुस्तिका वितरण की जाये।

५. आर्य समाज का स्वतन्त्रता आन्दोलन मे योग दान तथा धर्म की वास्तविक परिभाषा क्या हैं, छोटी-छोटी पुस्तके छपवा कर आन्दोलन के रूप में वितरित की जायें।

७. आर्य समाज ने समाज सुधार, महिलाओ का सुधार, अन्धविश्यास समाप्त, करने व सामाजिक अनेक कुरुतियों को समाप्त करने का कार्य किया।

८. आर्ष और अनार्ष विद्या मे आर्ष साहित्य या ज्ञान को छोटे-छोटे पुस्तिका रुप में छाप कर वितरण करना चाहिए।

नोट: उक्त छोटे-छोटे ट्रेक्टो को छापवाकर लाखो की संख्या मे निशुल्क सार्वजनिक वितरण किये जाये तो लोकचाहे थोडा ही पढे पर जिज्ञासा से पढ़ेंगे।

प्रत्येक ट्रेक्ट के ऊपर लिखा जाए (हिन्दू धर्म का रक्षक) आर्य समाज है। वेदों की ओर लौटे-।

गढ़ निवास मोहकमपुर, देहरादून उत्तराखण्ड
मो. : ९४११५१२०१९ / ९५५७६ ४१८००

❑❑❑

ऋषि दयानन्द का सत्संग
(स्वामी श्रद्धानन्द की डायरी से)

महात्मा गोपालस्वामी सरस्वती

''स्वामी दयानन्द जी महाराज बरेली नगर में १४ अगस्त सन् १८७९ ईसवी को पधारे उन दिनों मेरे पिता उस स्थान के शहर कोतवाल थे। स्वामी जी महाराज के पहुँचते ही कोतवाल सा० को हुक्म मिला कि पण्डित दयानन्द सरस्वती के व्याख्यानों के अन्दर फिसाद आदि को रोकने का बन्दोबस्त करें। मैं इन दिनों काशी में विशूचिका रोग फैलने के कारण और कालेज के विशेष छुट्टियाँ हो जाने के कारण बरेली आया हुआ था। मैं उन दिनों नास्तिक था। काशी की प्रबल मूर्ति-पूजा से व्याकुल होकर मतमतान्तरों में कुछ समय आन्दोलन करने के पश्चात् ईश्वर की सत्ता को ही अस्वीकार कर दिया था। ईश्वरीय ज्ञान का न तो कभी मानने वाला था और न ही इञ्जील और कुरान से मुझे कभी शान्ति प्राप्त हुई। देव का नाम ही न था। नास्तिक होने के अतिरिक्त मेरा यह दृढ़ मत था कि संस्कृत भाषा में बेहूदापन (मूर्खतापन) के अतिरिक्त बुद्धि की कोई बात है ही नहीं। यही कारण था कि काशी में शिक्षाप्राप्त्यर्थ पाँच तक निवास रखने और पण्डितों के हठ करने पर भी मैंने लघुकौमुदी का कुछ प्रारम्भिक भाग ही पढ़ा और कुछ संस्कृत काव्य के अध्ययन के अतिरिक्त संस्कृत भाषा की ओर कुछ विशेष ध्यान न दिया था। मेरे पिता पौराणिक धर्म पर पक्का विश्वास रखने वाले और प्रतिदिन ३ घण्टों की पूजा करने वाले थे। पुलिस विभाग में वह असाधारण समझे जाते थे, क्योंकि पूजा और पुलिस का कोई सम्बन्ध न था। स्वामी दयानन्द का पहला भाषण सुनकर आते ही पिता ने मुझसे कहा- ''**बेटा मुंशीराम! एक दण्डी संन्यासी आये हैं। बड़े विद्वान् और योगिराज हैं। तुम्हारे संशय उनकी वक्तृता सुन के निवृत्त हो जायेंगे, कल मेरे साथ चलना।**'' मेरे पिता को विदित था कि मैं नास्तिक हूँ, क्यों कि अपने विचारों को छिपाने की योग्यता मुझमें पहले ही से न थी। उत्तर में मैंने प्रतिज्ञा की, कि चलूँगा। परन्तु और कुछ न कहा क्योंकि मन में उसी समय विचार आया कि संस्कृत जानने वाला साधु बुद्धि की क्या बात करेगा! दूसरे दिन (अर्थात् १५ अगस्त सन् १८७९ को) खजांची लक्ष्मीनारायण की कोठी बेगम बाग में पिता जी के साथ पहुँचा, जहाँ व्याख्यान हो रहा था। उस दिव्य आदित्य-मूर्ति को देख कुछ श्रद्धा उत्पन्न हुई, परन्तु जब पादरी टी. जे. स्कॉट और दो-तीन अन्य युरोपियनों को उत्सुकता से बैठे देखा तो श्रद्धा और भी बढ़ी। अभी दस मिनट वक्तृता नहीं सुनी थी कि मन में विचार किया- 'यह विचित्र व्यक्ति है कि केवल संस्कृतज्ञ होते हुए युक्तियुक्त बातें करता है कि विद्वान् दंग हो जाएँ!' व्याख्यान परमात्मा के निज नाम '**ओ३म्' पर था। वह पहले दिन का आत्मिक आह्लाद कभी भूल नहीं सकता। नास्तिक रहते हुए भी आत्मिक आह्लाद में निमग्न कर देना ऋषि–आत का ही कथा था।**

उसी दिन दण्डी स्वामी से निवेदन किया गया कि (कुतुबखाने) पर टाउन हॉल मिल गया है इसलिए कल से व्याख्यान वहाँ शुरू होंगे स्वामी जी ने उच्च स्वर से कह दिया कि सवारी समय पर पहुँच जाया करेगी तो वह तैयार मिलेंगे।

टाउन हॉल में जबतक 'नमस्ते', 'पोप', 'पुराणी, जैनी, किरानी, कुरानी' इत्यादिक परिभाषाओं का अर्थ बतलाते रहे तबतक तो पिता जी श्रद्धा से सुनते रहे, परन्तु जब **मूर्त्ति–पूजा और ईश्वरावतार का खण्डन** होने लगा, तो जहाँ एक ओर मेरी श्रद्धा बढ़ने लगी, वहाँ पिता जी ने तो आना बन्द कर दिया और एक अपने मातहत थानेदार की ड्यूयी लगा दी।''

''२४ अगस्त की शाम तक मेरा समय-विभाग यह रहा कि दिन का भोजन करके दोपहर को बेगम बाग की कोठी पहुँच ड्योढ़ी पर बैठ जाता। **ढाई से चार बजे के बीच में जब ऋषि का दरबार लगता तो आज्ञा होते ही जो पहला मनुष्य आचार्य ऋषि को प्रणाम करता, वह मैं था। प्रश्नोत्तर होते रहते और मैं उनका आनन्द लेता रहता।** व्याख्यान के बाद बीस मिनट तक सब दरबारी विदा हो जाते और आचार्य चलने की तैयारी कर लेते। मैं अपनी वेगनट पर सीधा टाउन हॉल पहुँचता। व्याख्यान का आनन्द उठाकर उस समय तक घर न लौटता, जब तक कि आचार्य दयानन्द की बग्धी उनके डेरे की ओर न चल देती। **२५, २६, २७ अगस्त को ऋषि दयानन्द के पादरी स्कॉट के साथ तीन शास्त्रार्थ हुए। विषय प्रथम दिवस पुनर्जन्म, द्वितीय दिन ईश्वरावतार और तीसरे दिन यह था कि मनुष्य के पाप बिना फल भुगते क्षमा किये जाते हैं या नहीं।** पहले दो दिन लेखकों में मैं भी था। परन्तु दूसरी रात को मुझे सन्निपात ज्वर हो गया और फिर आचार्य दयानन्द के दर्शन में न कर सका।''

स्वामी दयानन्द की आँखों देखी प्रात: चर्या

''मुझे आचार्य दयानन्द के सेवकों से मालूम हुआ कि नित्य प्रात: शौच से निवृत्त होकर, केवल कौपीन पहने, लट्ठ हाथ में लिये, साढ़े तीन बजे बाहर निकल जाते हैं और छह बजे लौटकर आते हैं। मैं ने निश्चय किया कि उनका पीछा करके देखना चाहिए कि बाहर वह क्या करते है। दबदबे-कैसरी अखबार के एडिटर भी मेरे साथ हो लिये। ठीक साढ़े तीन बजे बाहर निकलकर आचार्य चल दिये। हम पीछे हो लिये। पाव मील धीरे-धीरे चलकर वह इस तेजी से चले कि मुझ सा शीघ्रगामी जवान भी उन्हें निगाह में न रख सका। आगे तीन मार्ग फटते थे। हमें कुछ पता न लगा कि किधर गये। दूसरे दिन प्रात: काल हम ढाई बजे से ही घात में उस जगह छिपकर जा बैठे जहाँ से तीन मार्ग फटते थे। उस विशाल रूद्र मूर्त्ति को आते देखकर हम भागने को तैयार हो गये। वह तेज चलते थे और मैं पीछे भाग रहा था। मेरे पीछे बनिये एडिटर भी लुढ़कते- पुढ़कते आ रहे थे। बीच में एक-आध मील की दौड़ भी रुद्र स्वामी ने लगायी। परन्तु वहाँ मैदान था, मैंने उनको आँख से ओझल न होने दिया। अन्त को पाव मील धीरे-धीरे चलकर एक पीपल के वृक्ष- तले बैठ गये। घड़ी से मिलाया तो पूरे डेढ़ घण्टे आसन जमाये समाधि में स्थित रहे। प्राणायाम करते नहीं प्रतीत हुए, आसन जमाते ही समाधि लग गयी। उठकर दो अँगडाइयाँ ली और टहलते हुए अपने तत्कालीन आश्रम की ओर चल दिये।''

प्रतिज्ञा–पालन में अवहेलना पर रोष

''एक शनीचर के व्याख्यान के पीछे श्रोतागण को बतलाया गया कि दूसरे दिन (आदित्यवार को) नियत समय से एक घण्टा पहले व्याख्यान शुरू होगा। आचार्य ने उसी समय कह दिया कि यदि सवारी एक घण्टा पहले पहुँचेगी तो मैं उसी समय चलने को तैयार रहूँगा। आदित्यवार को लोग पिछले समय से डेढ़ घण्टे पहले ही जमा होने लगे। कुतुबखाने का टाउन

हॉल (व्याख्यान-भवन) खचाखच भर गया था, परन्तु आचार्य न पहुँचे। पाव घण्टा, आध घण्टा, भी बीत गया, परन्तु बग्धी की घड़घड़ाहट न सुनायी दी। पौन घण्टा पीछे ऋषि दयानन्द की विशाल मूर्त्ति उन्हीं वस्त्रों से अलंकृत, जो उनके चित्र में दिखाये जाते हैं, ऊपर चढ़ती दिखायी दी। मध्य की डाट के नीचे वाली एक ओर की दीवार में सोटा टेककर, ईश्वर-प्रार्थना के लिए बैठने से पूर्व उन्होंने कहा, ''मैं समय पर तैयार था, परन्तु सवारी न आयी। बहुत प्रतीक्षा के पीछे पैदल चल दिया। मार्ग में पिछले नियम समय पर ही सवारी मिली। इसलिए देरी हो गयी। सभ्य पुरूषो! मेरा कुछ दोष नहीं है। दोष बच्चों के बच्चों का है जो प्रतिज्ञा करके पालन करना नहीं जानते।'' यह संकेत खजांची लक्ष्मीनारायण की ओर था जिनके अतिथि होकर उनकी बेगम बाग वाली कोठी में स्वामी दयानन्द ठहरे हुये थे।''

किरानियों (ईसाइयों) की लीला

''एक व्याख्यान में वे पौराणिक असम्भव तथा आचारभ्रष्ट कहानियों का खण्डन कर रहे थे। उस समय पादरी स्कॉट, मिस्टर एडवर्ड कमिश्नर, मिस्टर रीड कलेक्टर, १५ वा २० अंग्रेजों सहित उपस्थित थे। आचार्य ने अन्य कहानियों में पंचकुँवारियों की कल्पना पर कटाक्ष किया और एक से अधिक पति रखनेठाली द्रौपदी, तारा, मन्दोदरी आदि के किस्से सुनाकर श्रोतागण के धार्मिक भावों की अपील की। स्वामी जी के कथन में हास्यरस अधिक होता था, इसलिए श्रोतागण थकने न थे। साहब लोग हँसते और आनन्द लूटते रहे। फिर आचार्य बोले- ''पुरानियों की तो यह लीला है, अब किरानियों की लीला सुनो! ये ऐसे भ्रष्ट हैं कि कुमारी के पुत्र उत्पन्न होना बतलाते, फिर दोष सर्वज्ञ, शुद्धस्वरूप परमात्मा पर लगाते और ऐसा पाप करते हुए तनिक भी लज्जित नहीं होते।'' इतना सुनते ही कमिश्नर और कलेक्टर के मुँह क्रोध के मारे लाल हो गये, परन्तु आचार्य का भाषण उसी बल से चलता रहा और अन्त तक ईसाई मत का ही खण्डन होता रहा।''

हम तो सत्य ही कहेंगे

''दूसरे दिन प्रात:काल ही खजांची लक्ष्मीनारायण को मिस्टर एडवर्ड, कमिश्नर साहब के यहाँ से बुलावा आया। साहब ने कहा-''अपने पण्डित स्वामी को समझा दो कि सख्ती से काम न लिया करे। हम ईसाई तो सभ्य है, वादविवाद की सख्ती से नहीं घबराते, परन्तु यदि जाहिल हिन्दू मुसलमान भड़क उठे तो तुम्हारे पण्डित स्वामी के व्याख्यान बन्द हो जाएँगे।'' खजांची जी यह सन्देश आचार्य तक पहुँचाने की प्रतिज्ञा करके लौटे। खजांची जी चाहते थे कि बात छेड़नेवाला कोई अन्य मिल जाये जिससे वह आचार्य की झाड़ से कुछ-कुछ बच जाएँ। जब कोई कड़ा न हुआ तो मुझ नास्तिक को आगे किया गया, परन्तु मैंने यह कहकर अपना पीछा छुड़ाया कि खजांची साहब कुछ कहना चाहते हैं, क्योंकि कमिश्नर साहब ने उनको बुलाया था। अब सारी मुसीबत खजांची जी पर टूट पड़ी। खजांची साहब कहीं सिर खुजाते हैं, कहीं गला साफ करते हैं। पाँच मिनट तक आश्चर्ययुक्त हारकर आचार्य बोले- ''भाई! तुम्हारा तो कोई काम करने का समय ही नियत नहीं, तुम समय के मूल्य को नहीं समझते। मेरे लिए समय अमूल्य है। जो कुछ कहना हो कह दो।'' इस पर खजांची जी बोले- ''महाराज! अगर सख्ती न की जाए तो क्या हर्ज है? असर भी अच्छा पड़ता है। अंग्रेजों को नाराज करना भी अच्छा नहीं।'' इत्यादि-इत्यादि बड़ी कठिनाई से अटक-अटककर ये वचन गरीब के मुँह से निकले। महाराज हँसे और कहा- ''अरे! बात क्या थी जिसके लिए गिड़गिड़ाता है? मेरा समय भी नष्ट किया। साहब ने कहा होगा, तुम्हारा पण्डित कड़ा बोलता है, व्याख्यान बन्द हो जाएँगे, यह होगा वह होगा। अरे भाई! मैं हौवा तो नहीं कि तुझे खा लूँगा? उसने तुझसे कहा, तू सीधा मुझसे कह देता! व्यर्थ इतना समय क्यों गँवाया?'' एक विश्वासी पौराणिक हिन्दू बैठा था, बोला- ''देखो! ये तो काई अवतार हैं, मन की बात जान लेते हैं।''

''उस शाम के व्याख्यान को कौन सुननेवाला भूल सकता है? मैंने बड़े-बड़े वाग्विशारदों के व्याख्यान सुने हैं, परन्तु जो तेज आचार्य के उस दिन के सीधे-साधे शब्दों से निकलकर सारी सभा को उत्तेजित कर गया उसके साथ किस की उपमा दूँ? उस दिन '**आत्मा के स्वरूप**' पर व्याख्यान था। पूर्वदिवस के सब अंग्रेज (पादरी स्कॉट के अतिरिक्त) उपस्थित थे। व्याख्यान में सत्य के बल का विषय आया। सत्य की व्याख्या करते हुए आचार्य ने कहा- **''लोग कहते हैं कि सत्य को प्रकट न करो, कलक्टर क्रोधित होगा, कमिश्नर अप्रसन्न हो, हम गवर्नर पीड़ा देगा। अरे! चक्रवर्ती राजा भी क्यों न अप्रसन्न हो, हम तो सत्य ही कहेंगे।''** इसके पीछे एक श्लोक पढ़कर आत्मा की स्तुति की। न शस्त्र उसे काट सके, न आग उसे जला सके, न पानी उसे गला सके और न हवा उसे सुखा सके। वह नित्य, अमर है। फिर गरजते शब्दों में बोले-''यह शरीर तो अनित्य है, इसकी रक्षा में प्रवृत्त होकर अधर्म करना व्यर्थ है इसे जिस मनुष्य का जी चाहे नाश कर दे।'' फिर चारों और तीक्ष्ण दृष्टि डालकर सिंहनाद करते हुए कहा- **''किन्तु वह शूरवीर पुरुष मुझे दिखाओ, जो मेरी आत्मा का नाश करने का दावा करे! जब तक ऐसा वीर इस संसार में दिखायी नहीं देता, तब तक मैं यह सोचने के लिए तैयार नहीं कि मैं सत्य को दबाऊँ वा नहीं।''** सारे हॉल में सन्नाटा छा गया। रुमाल का गिरना भी सुनायी देता था।''

स्वामी दयानन्द का बरेली के गिरजाघर (चर्च) में उपदेश

''एक दिन व्याख्यान से उठते ही ऋषि दयानन्द ने पूछा- ''भक्त स्कॉट आज दिखायी नहीं दिये?'' पादरी साहब किसी व्याख्यान से भी अनुपस्थित न होते थे, और अलग भी प्रेम-वार्तालाप किया करते थे, इसलिए ऋषि को उनसे बडा प्रेम हो गया था। किसी ने कहा, पास के गिरजे (चेपल) में आज उनका व्याख्यान था। सीढ़ियों के नीचे उतरते ही ऋषि ने कहा- ''चलो, भक्त स्कॉट का गिरजा देख आवें।'' अभी तीन चार सौ. आदमी खड थे। वह सारी भीड लेकर गिरजा पहुँचे। वहाँ व्याख्यान समाप्त हो चुका था; श्रोता सौ के लगभग थे। पादरी साहब नीचे उत्तर आये, स्वामी जी को वेदी (पुलपिट) पर ले गये और कहा कि कुछ उपदेश दीजिये। आचार्य ने खड़े-खड़े ही बीस मिनट तक मनुय-पूजा का खण्डन किया और बताया कि ईसा मसीह मनुष्य था, खुदा का बेटा नहीं।।''

हम किसी का मुलाहज़ा नहीं करते

''एक दिन आचार्य को पता लगा कि खजांची लक्ष्मीनारायण रईस, जिन की कोठी में स्वामी दयानन्द ठहरे हुये थे, का सम्बन्ध किसी वेश्या से है। उनके आने पर पूछा- ''तुम्हारा वर्ण क्या है?'' उन्होंने कहा, ''क्या कहूँ! आप तो गुण-कर्मानुसार व्यवस्था मानते हैं।'' आचार्य बोले, ''यों तो सब वर्णसंकर है परन्तु तुम जन्म से क्या हो?'' उत्तर मिला कि ''खत्री।'' महाराज बोले- ''यदि खत्री के वीर्य से वेश्या में पुत्र उत्पन्न हो तो उसे क्या कहोगे?'' खजांची ने सिर नीचा कर लिया। इस पर महाराज ने कहा-'' सुनो भाई! हम किसी का मुलाहज़ा नहीं करते। हम तो सत्य ही कहेंगे।'' खजांची जी ने वेश्या को कहीं अन्यत्र भिजवा दिया।''

❑❑❑

शान्तिपाठ

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

ओं पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।
ओं शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!

शब्दार्थ- (अदः) वह ब्रह्म, सनातनपुरुष (पूर्णम्) पूर्ण है और (इदम्) यह जगत्, सृष्टि, विश्व भी (पूर्णम्) पूर्ण है। (पूर्णात्) पूर्ण से (पूर्णम्) पूर्ण ही (उदच्यते) प्रकट होता है। (पूर्णात्) पूर्ण से (पूर्णम्) पूर्ण ही (उदच्यते) प्रकट होता है। (पूर्णस्य) पूर्ण में से (पूर्णम्+आदाय) पूर्ण को लेकर, निकालकर (पूर्णम्+एव) पूर्ण ही (अव+शिष्यते) शेष रहता है, बचता है। अथवा (पूर्णस्य, पूर्णम्, आदाय) पूर्ण की पूर्णता को लेकर जब जगत् अव्यक्तावस्था में चला जाता है तो (पूर्णम् एव, अव+शिष्यते) पूर्ण ही शेष रह जाता है।

उपनिषद्काल में उपनिषदों के आदि और अन्त में शान्तिपाठ किया जाता था। ऋग्यजुः साम और अथर्ववेद के उपनिषदों के शान्तिपाठ भिन्न-भिन्न हैं। ये पाठ प्रत्येक उपनिषद् के आदि-अन्त में दिये होते हैं। शुक्ल यजुर्वेदी अपने उपनिषद् के आदि-अन्त में उपर्युक्त शान्तिपाठ पढ़ते हैं।

पूर्णमदः– 'अदः' शब्द दूर की वस्तुओं के लिए प्रयुक्त होता है चाहे वे परोक्ष हो अथवा अधिकार दूर हों। सर्वसाधारण परमेश्वर में रमा नहीं होता. अतः सर्वव्यापक और सर्वान्तर्यामी होते हुए भी वह सर्वसाधारण के लिए परोक्ष है, दूर है। वह ब्रह्म पूर्ण है। सर्वत्र भरा हुआ है। उस ब्रह्म में कोई कमी नहीं है, न्यूनता नहीं है। इसी बात को अथर्ववेद १०/८/४४ में यूँ कहा है- **''रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः''** वह रस से पूर्ण है, उसमें कोई त्रुटि और अपूर्णता नहीं है। वह एकरस और अखण्ड है।

'**अदः**'- 'वह' सर्वनाम में एक और रहस्य छिपा हुआ है। एक साधक जो अत्यन्त जागरूक और सावधान होकर इस संसार में रहता है, वह यह अनुभव करता है कि संसार क्षणभंगुर जीवों से भरा पड़ा है और नाना प्रकार के दुःखों से व्याप्त है। वह अपने गुरु से पूछता है क्या जीवन का ध्येय मृत्यु और दुःख ही है, क्या जीवन का इससे उच्चतर कोई लक्ष्य नहीं है? गुरु उत्तर देते हुए कहता है- 'वत्स! जीवन का 'ध्येय जिसके सम्बन्ध में तुम पूछ रहे हो पूर्ण ब्रह्म है।'

पूर्णमिदम्- इदम् शब्द का प्रयोग निकट और प्रत्यक्ष वस्तुओं के लिए हुआ करता है। यह सृष्टि जिसको हम जानते हैं और जिसे नहीं जानते यह भी पूर्ण है। यह सृष्टि भी पूर्ण है, इसकी रचना में कोई कमी नहीं है। संसार में जितने पदार्थ हैं, वे सभी उपयोगी हैं। इस जगत् का निर्माण पूर्ण परमात्मा ने किया है। परमात्मा पूर्ण है, अतः यह जगत् भी पूर्ण है। प्रभु इस सृष्टि की रचना-**यथापूर्वमकल्पयत्** (ऋ० १०।१९०।३) पूर्व सृष्टि की भाँति ही करते हैं।

पूर्णात् पूर्णमुदच्यते- पूर्ण से पूर्ण ही उत्पन्न होता है। इसलिए यह सृष्टि पूर्ण है। संसार में हम देखते हैं कि जब एक वस्तु से दूसरी वस्तु का जन्म होता है तो उस वस्तु में कुछ परिवर्तन आ जाता है। उदाहरण के रूप में जब कुम्हार मिट्टी से घड़ा बनाता है तो उसका नाम और रूप परिवर्तित हो जाता है। जब स्वर्णकार सोने को गलाकर उससे नैकलेस तैयार करता है तो उसमें अन्तर आ जाता है। जब वृक्ष पूर्णरूपेण विकसित हो जाता है तब बीज समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार जब परमात्मा इस सृष्टि का सृजन करते हैं तो हो सकता है मूल का नाश हो जाता हो। उपनिषद् इस शंका का समाधान करते हुए कहते हैं जब उस पूर्ण परमात्मा से यह पूर्ण जगत् निकाल लिया जाता है तब जो बचता है, वह भी पूर्ण ही होता है।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते– उस ब्रह्म से यह विराट् संसार उत्पन्न हुआ, परन्तु उसकी पूर्णता में कोई भी न्यूनता नहीं आई, क्योंकि वह सदा पूर्ण है। पूर्ण समुद्र में से वाष्प के द्वारा कितना भी पानी उड़ जाए, समुद्र के जल में कोई न्यूनता नहीं आती। एक प्राध्यापक अपने जीवनकाल में सहस्त्रों विद्यार्थियों को एम.ए. करा देता है फिर भी उसके ज्ञान में कोई न्यूनता नहीं आती। एक दीपक लाखों दीपकों को जला देता है, उसके प्रकाश में कोई न्यूनता नहीं आती। विज्ञान का नियम है कि संसार की चाहे कितनी भी ऊष्मा शक्ति (Energy) खर्च हो जाए तो भी पूरी शक्ति में कोई न्यूनता नहीं आती। गणितशास्त्र का निमय है कि शून्य को शून्य से गुणा कीजिए, भाग दिजिए तो उत्तर शून्य ही आता है। ब्रह्म पूर्ण है, पूर्ण ब्रह्म से पूर्ण जगत् निकला तो भी वह पूर्ण ही रहा।

प्रलय में परमात्मा इस जगत् का संहार कर देते हैं तब भी यह पूर्ण ही रहता है। प्रकृति का नाश नहीं होता; वह सूक्ष्मरूप में, कारणरूप में तो सदा विद्यमान रहती है है।

ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः- शान्ति-मन्त्रों के अन्त में सदैव तीन बार शान्ति का आवाहन किया जाता है। तीन बार शान्ति का अभिप्राय है कि आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक तीनों प्रकार के दुःखों का अत्यन्त अभाव हो जाए। आध्यात्मिक दुःख वह है जो आत्मा को अपने शरीर या मन से प्राप्त होता है। आधिभौतिक दुःख वह है जो चोर, व्याघ्र, सर्प आदि के काटने, चोट लगने और चोरी आदि होने के कारण प्राप्त होता है। आधिदैविक दुःख वह है जो अतिवृष्टि, अनावृष्टि, बिजली गिरना, आग लगना, बाढ़ आदि प्राकृतिक प्रकोपों से प्राप्त होता है।

अथवा इसकी व्याख्या यूँ भी की जा सकती है कि बाधाएँ तीन स्थानों से आ सकती हैं। एक अज्ञात स्रोत से. दूसरे ज्ञात स्रोत से और तीसरे स्वयं हमारे अन्दर से। तीन बार 'शान्तिः' कहकर हम इन स्रोतों को बाध्य करते हैं कि ये सुख और शान्ति की ही वृष्टि करें।

तीन बार 'शान्तिः' का अर्थ पूर्ण शान्ति, अशान्ति का सर्वथा अभाव भी हो सकता है। इस पूर्ण शान्ति की प्राप्ति होती है प्रभु-दर्शन से। श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा है-

विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति।

- श्वे० ४।१४

विश्व को आच्छादन करनेवाले परम-कल्याणरूप प्रभु को जानकर उपासक परम शान्ति को प्राप्त होता है।

❐❐❐

हम निष्पाप होकर तेरे प्यारे बन जाएँ

आचार्य प्रियव्रत

कितवासो यद्रिरिपुर्न दीवि यद्वा घा सत्यमुत यन्न विद्म
सर्वा ता वि ष्य शिथिरेव देवाधा ते स्याम वरूण प्रियास: ।।८।।

अर्थ– (कितवास:) झूठे, छलिया लोगों ने **(यत्)** जो **(रिरिपु:)** थोप दिया है, परन्तु जो **(दिवि)** हमारे व्यवहार में **(न)** नहीं है **(यद्वा)** अथवा जो **(घा)** निश्चय से **(सत्यम्)** सचमुच ही पाप है **(उत)** और **(यत्)** जिसको हम **(न विद्य)** नहीं जानते हैं **(ता)** उन **(सर्वा)** सब पापों को **(शिथिर)** ढीले हुए फलादि **(इव)** जैसे (वृक्षों से गिर पड़ते है) वैसे हमसे **(विष्य)** छुड़ा दे (अधा) और तब **(वरूण)** हे वरणीय भगवन्! (ते) तेरे **(प्रियास:)** प्यारे (स्याम) हम बन जाएँ।

अनेक बार हमारे आचरण ऐसे होते हैं कि उन्हें पाप तो नहीं कह सकते, परन्तु उनमें कोई ऐसी असावधानी होती है कि जिसे लेकर जनता में हमारे सम्बन्ध में भ्रम फैलाया जा सकता है। धूर्त, छलिया लोग हमारी इस असावधानी का दुरुपयोग करके जनता में घोषित कर देते हैं कि हम अमुक प्रकार का पापाचरण करते हैं। यद्यपि यह पाप का आरोप हमपर धूर्त लोगों ने यों ही थोप दिया होता है, वह हमारे व्यवहार में वास्तव में नहीं होता, तब भी इसका परिणाम यह होता है कि जनता में हमारे विषय में सन्देह फैल जाता है और जनता में अपने विषय में सन्देह फैल जाने का फल यह होता है कि हम उन लोगों में जो अनेक अच्छे लोकहित के कार्य करना चाहते थे, वे करने असम्भव हो जाते हैं या उनके करने में बाधा पहुँचती है। अपने इस प्रकार के आचरणों को जिनसे हमारे पापी होने का सन्देह हो सकता है, हम पापाभास कह सकते है। ये वस्तुत: पाप तो नहीं होते, परन्तु पाप-जैसे दीखते हैं- इनका आभास पाप-जैसा होता है, इसलिए ये पापाभास हैं। हमें जहाँ पापों से दूर रहना चाहिए, वहा पापाभासों से भी दुर रहणा चाहिए क्योंकि पापों की भाँति पापाभास भी हमें बदनाम करके लोक-संग्रह के अयोग्य बना देते हैं और लोक-संग्रह के बिना हम कोई भी अच्छा कार्य नहीं कर सकते, इसलिए हमें अपना आचरण इतना स्वच्छ रखना चाहिए कि कोई भूल से भी उसमें पाप की धारणा न कर सके।

अनेक बार तो हमारे आचरण ऐसे होते हैं कि जो सचमुच ही पाप होते हैं। हमें इन सचमुच के पापाचरणों से तो बचना ही चाहिए। उनसे बचे बिना तो हमारा निर्वाह ही नहीं है।

जब हम पापाचरण करते हैं, तब कई बार तो ऐसा होता है कि हमें उसका ज्ञान होता है। हम जान रहे होते हैं कि अमुक बात हमें इस प्रकार नहीं करनी चाहिए थी, हम अपने स्वार्थ में पड़कर ही उसे इस तरह कर रहे हैं। इस अवस्था में हमारा आत्मा हमारे पाप की गवाही दे रहा होता है, परंतु कई बार ऐसा भी होता है कि हमें स्वयं अपने आचरण के पापमय होने का ज्ञान नहीं होता। यदि हमें इसका ज्ञान होता, तो हम सम्भवत: वह आचरण न करते। हमारे इस प्रकार अज्ञान के अधीन किये हुए पाप भी हैं तो पाप ही। प्रभु ने जड़ और चेतन जगत् के जो अनेक नियम बनाये हैं, उनके भङ्ग का नाम ही पाप है। इन नियमों का भङ्ग चाहे जानकर किया जाए और चाहे बिना जाने, उसके करने से हम अपने आचरण को पापमय तो बना ही लेते हैं, क्योंकि हमारे इस आचरण से व्यवस्था का भङ्ग होता है और हमारे समीपवर्ती लोगों को कष्ट पहुँचता है। अपने अज्ञान- जन्य पापों से बचने का उपाय यह है कि हम सारी वस्तुस्थिति का सही ज्ञान प्राप्त करें, इसलिए शास्त्रों में ज्ञान-प्राप्ति को धर्म का एक आवश्यक अङ्ग माना गया है।

अपने-आपको पूर्ण पवित्र बनाने के लिए हमें पापाभासों और पापों- दोनों से ही बचना चाहिए, फिर ये पापाभास और पाप चाहे ज्ञानपूर्वक हो रहे हों और चाहे अज्ञानपूर्वक- वे दोनों अवस्थाओं में पाप ही, इसलिए हमें ज्ञान- जन्य और अज्ञान-जन्य दोनों प्रकार के पापों से पृथक् रहना चाहिए और पाप से दूर रहने के अपने इस प्रयत्न में हमें प्रभू से सहायता की याचना करनी चाहिए। जब हम पाप से लडाई में अपना पूरा-पूरा बल लगा देने के अनन्तर प्रभु से इस युद्ध में विजय पाने के लिए सहायता की माँग करते हैं तब वे हमारी माँग को सुनते हैं और हमें पाप को जीतने की शक्ति प्रदान करते हैं। जब हमारी शक्ति में भगवान् की शक्ति मिल जाती है तब पाप हमसे इस प्रकार छूटकर गिर पड़ते हैं, जैसे पके हुए फल ढीले होकर वृक्ष से गिर पड़ते हैं तब हमारे साथ पापों का-पापाचरणों का सम्पर्क नहीं रहता। हम पूर्ण पवित्र बन जाते हैं।

पूर्ण पवित्र बन जाने का, पापों से सर्वथा दूर हो जाने का फल यह होता है कि हम उस वरणीय प्रभु के प्यारे बन जाते हैं। हमारे इस जीवन में उनकी हमपर अनेक कृपाएँ बरसने लगती हैं और मृत्यु के अनन्तर वे हमें मोक्ष-सुख का अधिकारी बना देते हैं। जो भगवान् का प्यारा बनना चाहता है, उसे पापाचरण छोड़कर पवित्र बनना चाहिए। पाप में लिस रहते हुए हम भगवान् की स्तुति कर लेनेमात्र से कभी उनके प्यारे नहीं बन सकते। जो जितना पाप से दूर होगा, वह उतना ही अधिक भगवान् का प्यारा होगा।

हे प्रभो! मेरे पापों को शिथिल करके परे गिराने में मेरी सहायता व मुझे निष्पाप बनाकर अपना प्यारा बना लो।

❒❒❒

बुजुर्गों ने दी समाज को 'पर्यावरण की सीख'

मुंबई के उपनगर सांताक्रुझ में प्राकृतिक वायु पर आधारित अनोखा शवदाह गृह बनाया गया है। देश में यह अपने किस्म का पहला प्रयोग है। हिंदुओं के अलावा कैथलिक, ईसाई और पारसी भी अब इसे स्वीकार कर रहे हैं, ताकि पर्यावरण की रक्षा हो। समय के साथ बदलने की यह सीख सांताक्रुज के बुजुर्गों ने पूरे देश को दी है।

गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं-

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥२.२७॥

संक्षेप में समझने का प्रयास करें तो, ''जो भी जीव पैदा हुआ है, उसे मरना है इसलिए शोक न करो।''

यह तो हो गई मानवीय भावनाओं तथा नजदीकी आत्मीयता की बात पर मानव सभ्यता की शुरूआत से ही तमाम समस्याओं की ही भांति एक समस्या खड़ी है, मृत हुए मनुष्यों अथवा पालतू पशुओं के अंतिम संस्कार की। ज्ञात शोधों के आधार पर कह सकते है कि सर्वप्रथम शवों को गाड़ने की प्रथा आरंभ हुई पर वैदिक काल में, जबकि हमारी पुनर्जन्म के प्रति आस्था प्रबल हुई तो जीव के नवजीवन प्राप्ति हेतु (खासकर मनुष्यों के लिए) दाह संस्कार की पद्धति अपनाई जाने लगी। यहा तक कि यूनान के महाकवि होमर के महाकाव्य 'इलियड' में भी दाह संस्कार पद्धति का ही उल्लेख मिलता है।

पर समय के साथ, खासकर वर्तमान सयम में, तमाम परेशानियां आने लगीं क्योंकि जगलों की अंधाधुंध कटाई तथा बढ़ती जनसंख्या ने समाज के अगुओं का ध्यान लकड़ी के विकल्प की ओर लगाया। परिणामत: शवों के दाह संस्कार के लिए कई नई तकनीकें सामने आई तथा कुछ हद तक प्रचलन में भी आई। मुंबई के सांताक्रुज (पश्चिम) उपनगर के कुछ अवकाश प्राप्त बजुर्गों के मन में भी यह बात आई, जिसका परिणाम है एशिया की इकलौती 'वायु दहन श्मशान' जो अपने निम्नतम प्रदूषण स्तर के लिए सहिष्णु हिंदुओं (सहिष्णु शब्द का प्रयोग इसलिए कर रहा हूं क्योंकि जितनाअधिक प्रयोग इस बहुसंख्यक समुदाय के रीति-रिवाजों के साथ यहां हुआ, उतना शायद कहीं पर अल्पसंख्यकों के साथ भी नहीं हुआ होगा) के साथ ही साथ अपने संस्कारों को लेकर काफी रूढ़िवादी माने जाने वाले कैथलिक ईसाई तथा पारसी समुदाय में भी काफी लोकप्रिय हो रहा है।

सेवानिवृत्ति के बाद के खाली समय के सार्थक व समुचित उपयोग हेतु देश के तमाम हिस्सों में बनाई गई 'वरिष्ठ नागरिक संस्थाओं' की ही भांति मुम्बई के सांताक्रुज उपनगर में बने सीनियर सिटिजन सांताक्रुज (पश्चिम) संस्था के सदस्यों ने आपस में विचार किया कि चूंकि अकेले सांताक्रुज (पश्चिम) स्थित श्मशान में शवों के दाह संस्कार के लिए ही हर साल १८०० से अधिक पेड़ों की कटाई हो जाती है जबकि राष्ट्रीय स्तर पर यह आंकड़ा और भयानक स्तर पार कर ८० लाख हो जाता है। तत्कालीन बृहन्मुंबई अधिकारियों के सामने वे सब एक लिखित प्रस्ताव लेकर गए कि, 'क्यों न सांताक्रुज (पश्चिम) के लिंक रोड और दत्तात्रेय रोड के किनारे पर स्थित हिंदू श्मशान भूमि में 'वाहिनी युक्त प्राकृतिक वायु' की व्यवस्था की जाए ताकि उस इलाके में वायु प्रदूषण की मात्रा नगण्य की जा सके तथा बिजली की भी बचत की जा सके।

यह पूरा प्रकल्प लगभग साढ़े तीन करोड़ का है तथा पांच हजार वर्ग फुट में फैला हुआ है जबकि इसकी ऊंचाई १८ फुट है। इसमें दाह कार्य के लिए वाहिनी युक्त प्राकृतिक वायु की दो भट्टियां बनी हुई है तथा १७० लोगों के बैठने के योग्य 'मातोश्री कुमुदबेन न्यालचंद वोरा (मोरबी निवास) शांति स्थल' हॉल भी बनवाया गया है। आधुनिक तकनीकियों से सबक लेते हुए आडियो सिस्टम, वाईफाई सिस्टम, सीसीटीवी कैमरे, और वीडियो रिकार्डिंग की व्यवस्था भी की गई है ताकि मृतक के वे संबंधी जो शहर अथवा देश के बाहर होने के कारण दाह संस्कार में भाग न ले पाए हों वे भी सारी प्रक्रियाएं देख सकें।

इतना ही नहीं, यहां पर अस्थियों को रखने की जगह, वातानुकूलित शवपेटी और फोल्डिंग स्ट्रेचर की व्यवस्था भी की गई है। २३ अक्टूबर २०१६ को महाराष्ट्र के माननीय राज्यपाल श्रीविद्यासागर राव के हाथों उद्घाटित इस प्रकल्प ने ठीक २३ दिन बाद १४ नवम्बर को कार्य करना भी शुरू कर दिया था। यह पूरी प्रक्रिया भरतभाई शाह, नगिनभाई शाह (पूर्व मंच संचालक) जैसे प्रखर समाज प्रहरियों की मेहनत का परिणाम है, साथ ही बृहन्मुम्बई महानगरपालिका के अधिकारी भी धन्यवाद के पात्र है कि उन्होंने इस तरह की उच्च व नवीन प्रणाली पर भरोसा जताया। इतना ही नहीं, सुबह ८ बजे से लेकर शाम ८ बजे तक मोक्षवाहिनी द्वारा बांद्रा (पश्चिम) और अंधेरी (पश्चिम) के मध्य के नागरिकों के शवों को लाने के लिए नि:शुल्क सेवा भी शुरू की गई और उन क्षेत्रों के मध्य के नागरिक इस सेवा को ८१०८८४६८४६ तथा ८१०८८४१८४१ पर फोन कर प्राप्त कर सकते हैं।

बहुधा एक बात कही जाती है कि, सोचना जितना सरल है पर उस सोच को अमल में लाना उतना ही कठिन होता है। पर कभी-कभी आपके कार्य उतनी ही तेजी से आकार पाते जाते हैं, जितनी गहराई और शिदत से आप उसके प्रति सृजनशील भाव रखते है। कुछ ऐसा ही हुआ था इस मामले में भी। दरअसल शुरुआत में उनके प्रस्ताव पर मुंबई की महानगरपालिका ने तीन हजार वर्गफुट की जगह दी थी पर जब वे उस क्षेत्र की सहायक आयुक्त मनीषा म्हैसकर के सामने बैठे तो उन्होंने उसे और विस्तार दे दिया। संस्था के महासचिव नगिनभाई शाह बताते हैं-

''मनीषा म्हैसकर मैडम ने बताया कि, चूंकि आपके प्रस्ताव में एक ही वायु भट्टी का प्रस्ताव है इसलिए यह पास नहीं हो पाएगा। हमने उनके सामने अपनी समस्या रखी कि, हमें केवल तीन हजार वर्गफुट ही जगह दी गई है। ऐसी स्थिति में हम दो वायु भट्टियां कहां से बना पाएंगे? उन्होंने उसी समय अपने इंजीनियरों को बुलाया तथा कहा कि, इनके प्रस्ताव पर आबंटित भूमि को बढ़ाकर पांच हजार वर्गफुट किया जाए तथा उस स्थान पर जाकर इनके लिए सारी व्यवस्था की जाए। जब हम अंतिम योजना लेकर उनके

पास गए तो उन्होंने स्वयं आयुक्त के पास जाकर सारी कागजी कार्यवाही पूरी की तथा बार-बार हम सबको प्रोत्साहित करती रही। वे बार-बार एक ही बात कहती थी कि, यह शबदाह गृह मुंबई मात्र ही नहीं बल्कि पूरे महाराष्ट्र राज्य में एक आदर्श और मानक के तौर पर स्थापित होना चाहिए, ताकि प्रदेश के दूरदराज के इलाकों के भी लोग इसे देखने आएं तथा इससे प्रेरणा ले सकें। यदि राज्य अथवा राष्ट्रीय स्तर पर इस तरह के शवदाह गृह बनने की शुरुआत होती है तो पर्यावरण की सजगता के प्रति एक बेहतरीन कदम साबित हो सकता है।''

हमारा पूरा लक्ष्य यह रहा कि पर्यावरण संतुलन तथा आधुनिक सुविधाओं के साथ वैश्विक पटल पर छाप छोड़ने वाला एक शवदाह गृह बने। अगर हम पूरे विश्व के ऐसे प्रकल्पों की बात करें तो इसके अलावा इकलौता प्रकल्प आस्ट्रेलिया में है। महानगर पालिका ने हमसे ५ लाख का डिपॉजिट, स्क्रूटनी फीस, निर्माण शुल्क जैसे शुल्क नहीं लिए तथा वहा का बिजली बिल, प्राकृतिक वायु बिल, मालमत्ता कर, पानी का बिल वगैरह का शुल्क महानगर पालिका ही देगी। जब हम सबने कार्य शुरु किया तो हमारे पास मात्र ७० लाख रुपए ही थे। उनमें से ३५ लाख रुपए ठेकेदार को ही देने थे। हमारे सामने समस्या आई कि इसे कैसे किया जाए? कुछेक स्थानीय समाचार पत्रों में समाचार आने के बाद हमें काफी दानदाता मिले तथा आगे चलकर हमने एक समन्वय एवं परिचय सत्र रखा तथा उसके सार्थक परिणाम देखने को मिले।

इसके निर्माण के दौरान आध्यात्म, पर्यावरण, श्रद्धा एवं मृतक श्राद्ध के दौरान किए जाने वाली रीतियों का पूरा खयाल रखने की कोशिश की गई है। यहां आने वालों की परंपराओं का ध्यान रखते हुए अपनी तरफ से १० ग्राम देशी घी तथा लकड़ी के पांच छोटे टुकडे भी दिए जाते है ताकि लोग अपनी परंपराओं से भी जुड़ाव महसूस करते रहें। हमारी संस्था द्वारा मृत व्यक्ति के परिवार को एक पौधा नि:शुल्क दिया जाता है, जिसे उनके द्वारा योग्य स्थान पर लगाकर उनके द्वारा उस वृक्ष पर समुचित ध्यान दिए जाने की अपेक्षा रखते हैं। पारंपरिक तरीके से शव जलाने पर सामान्यत: पंद्रह से बीस किलोग्राम तक राख और अस्थियां निकलती हैं जो कि अधजली अवस्था में होती हैं जबकि इस पद्धति में मात्र सवा किलो राखमय अस्थियां निकलती है जो पर्यावरण को नुकसान नहीं पहुंचाएगी। यह शवदाहगृह ISO १४००१:२०१५ के अंतर्गत पंजीकृत है।

यह प्रकल्प जिस इलाके में कार्य कर रहा है, वह मुंबई के उपनगरीय क्षेत्र में काफी धनाढ्य माना जाता है। अत: यहां पर बहुत सारे शवों पर कीमती शालें भी डालकर लाई जाती है। क्रियाकर्म के बाद लोग उन्हें छोड़ जाते हैं। संस्था के लोग उन शालों को धोकर रख लेते हैं ताकि ठंड के मौसम में उनका उपयोग गरीब लोगों के बीच किया जा सके। ज्ञात हो कि संस्था अब तक लगभग २०० शालों का वितरण फुटपाथ पर रहने वाले गरीब लोगों के बीच कर चुकी है। सबसे बड़ी बात है कि किसी कार्यक्रम का आयोजन किए बिना ही रात में फुटपाथ पर सो रहे बेघरों के ऊपर चुपके से शाल ओढ़ा कर यह सारा शाल वितरण किया जाता है। यहां पर बहुत ज्यादा मात्रा में निर्माल्य भी निकलता है, जिसे परिष्कृत कर खाद बनाकर उपयोग लाने का कार्य भी किया जाता है। अर्थात् यहां पर हर संभव प्रयास किया जाता है कि दाह क्रिया को कितना अधिक से अधिक प्रदूषण रहित बनाया जाए! ऊंची चिमनियों से निकलने वाले गंधहीन, रंगहीन और थोड़ी मात्रा में निकलने वाला धुआं इसका बेहतरीन उदाहहरण है।

यह तो रही इस शवदाह गृह में आने वाले परंपरागत हिंदू शवों की बात, पर यहां कुछ अन्य चमत्कार भी हुए हैं। चमत्कार इसलिए क्योंकि यदि हम शवों के अंतिम संस्कार की बात करें तो हिंदुओं में जलाने के अलावा कहीं-कहीं गाड़ने तथा वैरागी साधुओं को नदी की तेज धारा में प्रवाहित करने की भी परंपरा है। पर बाकी के समुदाय अपने अंतिम संस्कार के नियमों व पद्धतियों को लेकर काफी रुढ़िवादी हैं। पर जैसा कि हम शुरुआत में ही बता चुके हैं कि यह श्मशान गृह कैथलिक, ईसाई तथा पारसी लोगों के बीच भी चर्चा का विषय बना हुआ है। ज्ञात हो कि एक तरफ जहां कैथलिक, ईसाई शवों को गाड़ने तथा रोमन पोप के बताए गए रूढ़िवादी नियमों को सीमा की अति तक मानने हैं जबकि पारसी समुदाय में घी का लेप लगाकर शव को कुएं में डाल दिया जाता है, जहां पर उस शरीर को गिद्ध खा जाते हैं। पर उस क्षेत्र के बिशप ने बाकायदा घोषणा की कि यहां पर पर्यावरण प्रेमी ईसाई अपनी अंतिम विधि शव जलाकर कर सकते हैं। अब तक लगभग १५ कैथलिक ईसाइयों के दाह संस्कार भी किए जा चुके हैं। पिछले एक वर्ष में इस पद्धति द्वारा यहां पर अब तक लगभग ६७०.शवों का अंतिम संस्कार किया जा चुका है।

यहां के कर्ताकर्ताओं ने आर्य समाजियों के बीच भी अपनी बात रखी, ताकि वे भी अपने नियमों को ढील दे शवदाह करे सकें तथा वारकरी समुदाय के लोगों से अपील की है कि वे अपने परंपरागत अभंगों के माध्यम से लोगों को इसके बारे में जागरूक करें ताकि लोग पर्यावरण की रक्षा के प्रति सजग हों तथा ज्यादा से ज्यादा स्थानों पर इस तरह की व्यवस्था की जा सके। किसी के घर पर मृत्यु होने की दशा में उन्हें इस शवदाह गृह में नि: शुल्क दाह संस्कार के प्रति प्रेरित भी किया जाता है तथा लोगों के बीच अंगदान जैसे पुनीत कार्य के प्रति भी जागरुकता फैलाई जाती है। यह पहल हमारे समाज के लिए अति अनुकरणीय है क्योंकि इसकी शुरुआत करने से लेकर समन्वय तथा परिसंचालन का पूरा दायित्व अवकाश प्राप्त बुजुर्गों द्वारा निर्वहन किया जा रहा है। समाज के अन्य वर्गों तथा देशभर की तमाम स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा इनका अनुसरण किया जाना चाहिए तथा समाज इस प्रदूषण मुक्त प्रकल्प से सीख ले और देशभर में इस विकल्प का प्रयोग किया जाए ताकि भविष्य का भारत प्रदूषण मुक्त होने की दिशा में सार्थक कदम बढ़ा सके।

और आखिर में चलते-चलते, कुछ दिनों पूर्व ही बालीवुड के मेगास्टार स्व. शशि कपूर तथा लोकप्रिय गुजराती व हिंदी फिल्म अभिनेता नीरज वोरा का अंतिम संस्कार भी इसी श्मशान भूमि में वायु वाहिनी द्वारा ही किया गया था जो कि एक अनुकरणीय पहल है।

मोबाईल : ८२८६२ ०५०६५

❏❏❏

राजा के अधिकार और कर्त्तव्य

डॉ. वेद प्रकाश

राजा अपने राष्ट्र में सर्वोपरि होता है, इसलिए उसके अधिकार एवं कर्त्तव्य भी सर्वोपरि, अर्थात् सर्वोत्तम एवं सबसे अलग होते हैं। राजा का मुख्य कर्त्तव्य अपनी प्रजा की रक्षा, उसके साथ न्याय तथा उसके सभी दु:खों को दूर करना है। अपने कर्त्तव्य की पूर्ति के लिए ही राजा को सर्वोपरि अधिकार दिये जाते हैं। उन अधिकारों के बल पर ही राजा दुष्टों को दण्ड तथा अपनी प्रजा को सुख प्रदान करता है।

राजा के प्रमुख अधिकार और कर्त्तव्य इस प्रकार हैं-

१. राजा आन्तरिक और बाह्य शत्रुओं से अपनी प्रजा की रक्षा करे। इसके लिए देश के आन्तरिक क्षेत्र तथा बाह्य सीमाओं की सभी भाँति रक्षा हेतु सर्वोत्तम सेना का गठन करे तथा सैनिकों को सर्वोत्तम भोजन, शिक्षा, चिकित्सा और अस्त्र-शस्त्र प्रदान करे।

२. देश के शत्रुओं- चोर, डाकू, दुराचारी, हत्यारों तथा प्रजा पर अन्याय-अत्याचार करनेवाले अपराधियों को अत्यन्त कठोर दण्ड देवे।

३. समस्त देशवासियों के लिए सर्वोत्तम शिक्षा-दीक्षा, चिकित्सा और सुरक्षा की व्यवस्था करे।

४. देश में कृषि की सर्वोत्तम विधियों को अपनाने की व्यवस्था करे।

५. कृषि और व्यापार को सदैव लाभकारी स्थिति में ही रखे।

६. देश के समस्त नागरिकों को जल, भोजन, भवन और आजीविका की व्यवस्था करे।

७. देश के सभी पशु पक्षियों की सुरक्षा करे। निर्दोष पशु-पक्षियों को कष्ट देने और उन्हें मारनेवालों को कठोरतम दण्ड देवे।

८. देशवासियों के लिए उत्तम मार्गों का निर्माण करावे।

९. देश में व्याप्त अज्ञान, फैलानेवालों को कठोर दण्ड देवे।

१०. देशवासियों को अतिशीघ्र न्याय प्रदान करे। न्याय के लिए राजा के द्वार सदैव खुले रहने चाहिये।

११. देश में कृषि-व्यापार के माध्यम से अपार धन-धान्य की वृद्धि करावे।

१२. अपने सभी कार्य राष्ट्रभाषा में करे तथा प्रजा से भी राष्ट्रभाषा में ही कार्य करावे।

१३. ज्ञान-विज्ञान, शिल्प, कला-कौशल की बहुत अधिक उन्नति करे और करावे, जिससे चहुँ ओर सुख का सञ्चार होवे।

१४. धर्मात्मा राजा से सदैव मित्रता और दुष्ट राजा को धर्मात्मा राजाओं के साथ मिलकर पराजित करे तथा उसे दण्ड देवे या दिलावे।

१५. राष्ट्रहित के प्रत्येक विषय पर मन्त्री-परिषद् राजा 'की उपस्थिति में निष्पक्ष होकर अच्छी प्रकार विचार-विमर्श करे। सबका पक्ष सुनने के पश्चात् राजा परिषद् के बहुमत का सम्मान करते हुए अपना निर्णय देवे। राजा का निर्णय ही अन्तिम और सबको स्वीकार्य होना चाहिये।

भारतवर्ष के वर्तमान शासक–

राजा के उपर्युक्त अधिकार और कर्त्तव्यों पर दृष्टिपात करने के बाद जब हम अपने राजाओं (शासकों) के अधिकारों और कर्त्तव्यों को देखते हैं तो यह स्पष्ट होता है कि भारतवर्ष में प्रदेश और केन्द्र-स्तर पर शासकों को उपर्युक्त सभी अधिकार एवं कर्त्तव्य प्राप्त हैं, किन्तु दुर्भाग्य का विषय है कि वे इन अधिकारों और कर्त्तव्यों का सदुपयोग नहीं करते।

देश के अधिकांश शासक स्वार्थ-सिद्धि में लगे हुए हैं। वे अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों का पालन अपने लिए, अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों का पालन अपने लिए, अपने इष्ट-मित्रों के लिए, अपने राजनीतिक दलों के लिए और येन-केन-प्रकारेण सत्ता-प्राप्ति के लिए ही करते हैं।

यदि भारतवर्ष के शासक अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों का पालन राष्ट्र की उन्नति हेतु करते, तो आज देश पिछड़ा हुआ न रहता और देश की वह दुर्दशा न होती, जो आज हो चुकी है। आज भारतवर्ष के शासक अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों का पालन किस प्रकार कर रहे हैं, उसकी एक झलक देख लीजिये-

१. वर्तमान शासक देश के अन्दर और सीमाओं पर शत्रु निरन्तर आक्रमण कर रहे हैं। यद्यपि कुछ आक्रमणकारी मारे भी जाते हैं, तथापि उनके आक्रमण रुके नहीं हैं। आक्रमणकारी बाह्य सीमा से लेकर जम्मू-कश्मीर की विधानसभा, दिल्ली का लालकिला, सैनिक छावनियों, मन्दिरों, सामान्य नागरिकों और संसद्भवन पर भी आक्रमण कर चुके हैं। इन आक्रमणों को रोकने में भारतवर्ष के शासक पूर्णत: असफल रहे हैं।

आक्रमणकारियों से लड़नेवाले हमारे वीर सैनिकों के पास आज तक सर्वोत्तम कोटि के अस्त्र-शस्त्र, सुरक्षा-उपकरण, वाहन और सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं। इनमें भी सुरक्षा-कवच, रात्रि में देखनेवाले कैमरे, अत्याधुनिक यान, आदि का विशेष अभाव है।

२. हमारे देश में चोर, डाकू, हत्यारे, दुराचारी को कठोर दण्ड देने का विधान है, परन्तु निर्धन अपराधी तो दण्ड पाते हैं और धनवान् अपराधी अपने धनबल के कारण निर्दोष सिद्ध हो जाते हैं। वर्तमान शासक उन्हें दण्ड ही नहीं दिलवा पाते।

३. हमारे शासक देश के सभी नागरिकों के लिए आज तक सर्वोत्तम शिक्षा-दीक्षा, चिकित्सा और सुरक्षा की व्यवस्था नहीं कर पाए।

४. भारतवर्ष के शासक आज तक सम्पूर्ण देश में कृषि की सर्वोत्तम विधियों को व्यवहार में नहीं ला सके।

५. शासन के अधीन चलनेवाले कृषि एवं व्यापार प्राय: घाटे में ही

नूतन निष्काम पत्रिका वर्ष-९ अंक-८ मुम्बई अगस्त - २०१८ || पृष्ठ-१६ || मूल्य- रु. ९/-

श्रावण - २०७४ (२०१८) Post Date : 25-08-2018 MCN/136/2016-2018 MAHRIL 06007/31/12/18-TC पोस्ट ऑफिस : (...)

आर्य समाज सान्ताक्रुज मुम्बई का मुखपत्र

संपादक : संगीत आर्य

मुद्रक एवं प्रकाशक : **चन्द्रपाल गुप्त द्वारा कृष्णा प्रिंटिंग प्रेस,** २६, मंगलदास रोड, मुंबई-२. से मुद्रित कराकर आर्य समाज भवन, वी. पी. रोड, (लिंकिंग रोड), सान्ताक्रुज़ (प.) मुंबई-४०० ०५४. से प्रकाशित किया। ● **दूरभाष : २६६० २८००/२६६० २०७५**

प्रति,

टिकट

चल रहे हैं।

६. भारतवर्ष के शासक आज तक देश के सभी नागरिकों के लिए जल, भोजन, भवन और आजीविका नहीं दे पाए।

७. भारतवर्ष के शासक देश के निर्दोष पशु-पक्षियों को कष्ट देने और उनकी हत्या करनेवालों को दण्ड देने में असमर्थ रहे हैं।

८. भारतवर्ष के शासक देश के नागरिकों के लिए उत्तम मार्गों का निर्माण नहीं करा पाए।

९. भारतवर्ष के शासक देश में अज्ञान, अन्धविश्वास, पाखण्ड और कुप्रथाओं को दूर करने तथा उन्हें फैलानेवालों को कठोर दण्ड देने में भी असफल रहे हैं।

१०. भारतवर्ष के शासक सभी देशवासियों को शीघ्र न्याय सुलभ नहीं करा पाते हैं। न्याय के लिए भारतवर्ष के शासकों के द्वार सदैव बन्द हैं। उनके अधीनस्थ और उनके अति निकटस्थ व्यक्तियों के अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति उनसे मिल नही सकता। शासकों के दर्शन इतने दुर्लाभ हैं कि जनसामान्य उनसे मिलने की कल्पना भी नहीं कर सकता।

११. भारतवर्ष के शासक देश की कृषि और व्यापार को पूर्णत: विनाश की ओर ले जा रहे हैं। उनसे अपार धन की वृद्धि की कल्पना करना तो महामूढ़ता है।

१२. भारतवर्ष के शासक अपने सभी शासकीय कार्य प्राय: राष्ट्रभाषा में नहीं करते। इसके लिए तो उन्हें केवल अंग्रेजी भाषा ही परमप्रिय लगती है।

१३. भारतवर्ष के शासकों ने ज्ञान-विज्ञान, शिल्प और कला-कौशल की उन्नति तो करवाई है, परन्तु इतने अधिक वर्षों में अन्य देशों की तुलना में यह उन्नति कुछ भी नहीं है।

१४. भारतवर्ष के शासकों ने अपने पड़ोसी देश पाकिस्तान, चीन, बंगलादेश और श्रीलंका से मित्रता की, किन्तु तीनों से ही हानि उठाई। चीन ने भारत पर आक्रमण किया और एक बड़ा भूभाग हस्तगत कर लिया।

पाकिस्तान के साथ भारतवर्ष के अनेक युद्ध हो चुके हैं और भारतवर्ष के शासक आज तक उसके अधीन कश्मीर का एक इञ्च भू-भाग भी प्राप्त नहीं कर सके।

बंगलादेश का जन्म भारतवर्ष की सेना द्वारा ही हुआ। वही बंगलादेश आज तक अनेक वार सीमा पर झड़पें कर चुका है।

श्रीलंका में लिट्टे से लड़ने के लिए भारतवर्ष ने अपनी सेना को भेजा, किन्तु असफल होकर सेना लौट आयी।

पाकिस्तान आज तक हमारे देश की सीमाओं पर नित्य प्रति खुला आक्रमण कर रहा है; भारतवर्ष में आतंकवाद को सभी प्रकार की सहायता प्रदान कर रहा है; अपने देश में आतंकवादियों को तैयार करके भारतवर्ष में हिंसा और आतंक फैलाने के लिए भेज रहा है, किन्तु भारतवर्ष के शासक असहाय की मुद्रा में बैठे हैं। वे केवल वक्तव्य देने के अतिरिक्त पाकिस्तान को पाठ पढ़ाने का साहस नहीं रखते।

इस प्रकार भारतवर्ष के वर्तमान शासक राजा के अधिकार एवं कर्त्तव्यों की कसौटी पर खरे नहीं उतरते।

पुन: बन सकता है एक नया पाकिस्तान-

भारतवर्ष के स्वाधिनता संग्राम में आर्यों के नेता मोहनदास कर्मचन्द गाँधी और मुसलमानों के नेता मोहम्मद करीम जिन्ना थे। अलग पाकिस्तान के निर्माण के नाम पर जिन्ना ने ९० प्रतिशत मुसलमानों को अपने साथ कर लिया था, जबकि आर्य-मुस्लिम-एकता' के समर्थक गाँधी ४ प्रतिशत मुसलमानों को भी अपने साथ नहीं जोड़ पाए। इसका अर्थ हुआ कि पराधीनता के काल में भी ९० प्रतिशत मुसलमान आर्यों के साथ रहना नहीं चाहते थे।

१९४७ में अखण्ड भारतवर्ष में १३.३८ प्रतिशत मुसलमान थे, जिन्होंने स्वतन्त्र पाकिस्तान बनवाकर ही श्वास लिया। देश के विभाजन के बाद भारतवर्ष में ४ प्रतिशत मुसलमान रह गए थे, किन्तु आज खण्डित भारतवर्ष में मुसलमानों की संख्या १३.४७ प्रतिशत अर्थात् १३ करोड़ से अधिक है इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि आज पुन: कोई नया जिन्ना सामने आ जाए और वह एक अन्य नये पाकिस्तान की माँग कर बैठे।

यदि ऐसा होता है तो भारतवर्ष के ९० प्रतिशत मुसलमान नये मुस्लिम राष्ट्र का समर्थन करेंगे और एक दिन अलग राष्ट्र बनाकर रहेंगे। इसके लिए केवल मुस्लिम तुष्टिकरण करनेवाला और धर्म-निरपेक्षतावादी वर्तमान भारतीय शासन ही दोषी होगा।

❐❐❐